

दुर्वासाका शाप ।

आनन्द शर्मा ।

Vishwamitra Press Calcutta

भारतीय-नारी-रत्नमालाका ६ ठा रत्न।

शकुन्तला



(स्त्री-शिक्षापूर्ण सचित्र पौराणिक उपाख्यान ।)

लेखकः—

पं० उमादत्त शर्मा ।



प्रकाशकः—

दी पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी ।

११५ हरीसन रोड,

कलकत्ता ।



संवत् १९८५

तृतीय संस्करण] [मूल्य ॥=)

प्रकाशक—
उमादत्त शर्मा,
दी पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी।
११५ हरीसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक—
बाबू मूलचन्द्र अग्रवाल बी० ए०
'विश्वमित्र'-प्रेस, ११५ हरीसन रोड,
कलकत्ता।

उपहार





महाभारतमें 'शकुन्तला' नामका एक उपाख्यान है। परन्तु महाभारतमें उल्लेख होने ही से वह इतना गौरव और ख्याति नहीं प्राप्त कर सका है। उसकी लोक-प्रसिद्धिका कारण कुछ और ही है। महाभारतमें लिखे इस उपाख्यानका—संसारके एक कवि-श्रेष्ठने एक नये ही ढांचेमें ढालकर उसको—लोक-विश्रुत कर दिया है।

संसार-प्रसिद्ध 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' या शकुन्तला-नाटकके रचयिता हैं, कविकुल-गुरु कालिदास। कालिदास भारतके ही महाकवि नहीं हैं, जिनका परिचय देनेकी आवश्यकता हो। भारतके एक प्राचीन महाकविने कवियोंकी गणना करते हुए कहा है कि, कालिदासके समान आज तक कोई कवि नहीं हुआ। आगे भी होगा या नहीं, इसे भगवान् ही जानें। पर अबतक ऐसा कोई कवि नहीं हुआ, जिसको मैं कालिदासकी पंक्तिमें बैठा सकूं! यह तो है एक भारत के प्राचीन महाकविकी राय। पर शायद इसमें पक्षपात हो। आज कलका सभ्यसंसार-'परस्परं प्रशंसन्ति'की इसे कहावत समझे, किन्तु बात ऐसी नहीं है। जर्मनीके महाकवि गेटेने एक कविता लिख कर कालिदासकी इसी कीर्तिकी प्रशंसा की है। कवि गेटेने कहा है,—"इस रूपात्मक संसारमें यदि कोई ऐसा नाम है, जिसमें जीवनके नव-मुकुलित वसन्त-कुसुमों और उनकी ढलती हुई अवस्था और बहार

हो, जिससे अन्तरात्मा मन्त्र-मुग्ध, मोहित, आनन्दित और विकसित हो, जो स्वर्ग और मर्त्य दोनोंको एक कर देता हो, तो वह मधुर नाम, हे शाकुन्तल तेरा है। तेरा नाम लेनेपर फिर और आगे कल्पना शक्तिको व्यर्थ कष्ट देनेकी आवश्यकता ही क्या है ?"—यह है महाकवि गेटेका सार्टिफिकेट, उन लोगोंके लिये जो संस्कृत-साहित्यको ऊल-जलूल कहकर अपनी विद्वत्ताका परिचय देते हैं।

महाकवि कालिदासके कितने ही प्रसिद्ध काव्य हैं, जिनका आज भी यथेष्ट प्रचार है।—जिसने कालिदासका कोई काव्य नहीं पढ़ा, वह काव्य-संसारसे दूर ही दूर भटकता फिरा—संस्कृतमें एक ऐसी कहावत है। और खण्ड काव्योंमें भी जिसने 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' को नहीं पढ़ा, उसने संसारके महान् अद्भुत कल्पना कौशलको देखने से अपनेको वञ्चित रखा।

हमारी यह पुस्तक उसी प्रसिद्ध 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्'के आधार पर उपाख्यानके रूपमें लिखी गई है। परन्तु इसको नाटकसे उपाख्यानके रूपमें ढालना, साधारण बात नहीं है। कालिदासकी कृतिको, उस कृतिको जो कि इतनी संसार-प्रसिद्ध है, कि जिसकी उपमाके लिये संसारका कोई काव्य पेश नहीं किया जा सकता, बहुत कठिन काम है। इस काममें अपनेको सफल समझना विडम्बना मात्र है। किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी शकुन्तला-नाटकके भावोंको उपाख्यानके रूपमें लानेकी पूरी चेष्टा की गई है। पर सफलता कहां तक प्राप्त हुई है, इसे हमारे विज्ञ कृपालु पाठक-पाठिकायें ही बता सकेंगे।

स्कूल-पाठशालाओंमें पढ़ाई जाने योग्य सरस और सरल भाषामें लिखकर और अनेक रङ्गीन चित्रोंसे सुसज्जित करके इसका मूल्य भी वही सर्व सुलभ ॥=) मात्र रखा गया है। आजतक निकले हमारे इस

साहित्यको हिन्दी-संसारने बड़ी कृपा और आदरकी दृष्टिसे देखा है। आशा है उनकी इसपर भी वैसी ही कृपा दृष्टि होगी।

माघ शुक्ला सप्तमी
सम्वत् १९८५

उमादत्त शर्मा



शकुन्तला ।

प्रथम-परिच्छेद ।

शकुन्तलाका जन्म ।

——*०*——



क बार राजर्षि विश्वामित्र एक एकान्त स्थानमें घोर तपस्या करनेके लिये अखण्ड-समाधि लगाये बैठे थे। ग्रीष्मका उत्ताप, वर्षाकी वारि-धारा और शीतकी प्रबलता उनको तनिक भी विचलित नहीं कर सकती थी। एकमात्र भगवान्का चिन्तन और संसारके लोभ, क्रोध और मोहका परित्याग ही इस साधनाका एकमात्र उद्देश्य था। परन्तु स्वर्गके राजा इन्द्रका आसन, इस कठोर साधनाको देख कर हिल उठा। देवराज इन्द्र सोचने लगे कि मैंने जो इस अमरपुरीका राज्य घोर तपस्या करके पाया है कौन जाने उससे भी उग्र तपस्या करके महामुनि विश्वामित्र, कहीं मेरे इस राज्यको न छीन लें!

देवराज इन्द्रने बड़ी घोर तपस्या और कठिन साधनाके बाद स्वर्गपुरीका राज्य पाया था। उसे कोई दूसरा ही उनसे भी उग्र तप करके छीन ले, और देवराज इन्द्र बेखबर रहें; और उसके प्रतिकार का कुछ उपाय न करें, भला यह कैसे हो सकता था? देवराज इन्द्र, अपने राज्यके खो जानेकी चिन्तासे घबड़ा कर जब भी कभी किसी ऋषि-मुनिको घोर तपस्या करते देखते, तो अनेक प्रकारके

षड्यन्त्र रच कर उनके तपको भङ्ग करनेकी चेष्टा करते। इस बार भी देवराज इन्द्रने अपनी अप्सरा मेनकाको बुलाकर विश्वामित्र मुनिका तप भङ्ग करनेका विचार स्थिर किया। मेनका बुलाई गई। मेनकाके आने पर देवराजने उससे कहा,—"सुन्दरी मेनका, तुम हमारी समस्त अप्सराओंमें श्रेष्ठ हो। इसलिये आज मैं तुमको एक बहुत ही आवश्यक, परन्तु गम्भीर काम पर लगाना चाहता हूं। सूर्यके समान तेजस्वी, जितेन्द्रिय, महामुनि विश्वामित्र मेरा अमरपुरीका राज्य छीननेके लिये घोर तपस्या कर रहे हैं। मैं उनकी इस उग्र तपस्याको भङ्ग करनेके लिये तुम्हें भेजना चाहता हूं। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि तुम अपने रूप-सुधाके अगाध समुद्रमें डुबा कर महामुनि विश्वामित्रकी यह घोर तपस्या भङ्ग कर सकोगी?"

मेनका देवराज इन्द्रका यह गम्भीर आदेश सुन कर स्तम्भित एवं भीत हो बोली,—"देवराज, मैं आपके आदेशका अर्थ नहीं समझ सकी। महामुनि विश्वामित्र महातेजस्वी तथा भयङ्कर क्रोधी तपस्वी हैं। उन्होंने क्रोधमें आकर महामुनि वशिष्ठके एकसौ पुत्रों को क्षण भरमें मार डाला था! क्षत्रिय होकर जबरदस्ती ब्राह्मणत्व की पदवी प्राप्त कर ली। अपने तेज-प्रभावसे अगाध-वारि-धारा बहा दी। देवताओंसे क्रुद्ध होकर एक नई सृष्टि रचनेका उपक्रम कर दिया था। देवताओंके राजा होकर भी स्वयं आप जिनके तपसे भयभीत हैं; क्षणभरमें जो समस्त संसारमें क्रान्ति खड़ी कर सकते हैं, उनको अपने रूप-सुधाके क्षुद्र-समुद्रमें डुबानेके लिये जाना, विडम्बना मात्र है! उनकी अखण्ड समाधिको भङ्ग करनेके लिये उनके पास जाकर गोलमाल करना, स्वयं उनके भयङ्कर क्रोधकी अग्निमें भस्म होकर मरना है। महाराज, यह गुरुभारका काम मुझसे न हो

सकेगा !” मेनकाकी बात समाप्त होने पर देवराजने रुष्ट होकर कहा,—“नहीं मेनका, इस प्रकारसे पिण्ड छुड़ानेसे काम नहीं चलेगा। यह काम तो तुमको अपने छल-बलसे किसी न किसी प्रकारसे करना ही होगा !” इन्द्रकी कड़ी आज्ञा सुन कर मेनका बोली,—“महाराज, यह काम करना ही होगा, तो लाचारी है। आप स्वामी हैं, मैं दासी। जो आज्ञा होगी करूंगी, परन्तु एक उपाय करना होगा। महामुनि विश्वामित्र महाक्रोधी हैं। यदि उनको यह मालूम हो गया कि यह काण्ड उनकी तपस्याको भङ्ग करनेके लिये ही किया जा रहा है, तो वे मुझे क्षणभरमें भस्म कर डालेंगे ! सो पहले ही से आप कोई ऐसा उपाय करें कि जिससे मेरा कुछ अनिष्ट न हो सके।”

देवराजने मेनकाकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने मेनकाकी सहायताके लिये कामदेव और वायुदेवताको भेजना स्थिर किया।

यथासमय तैयारी कर मेनका विश्वामित्रमुनिके आश्रममें पहुंची। घोर गहन वनमें एक वृक्षके नीचे महामुनि विश्वामित्र अखण्ड समाधि लगाये बैठे थे। चारों ओर शान्तिका साम्राज्य था। कहीं किसी प्रकारकी अशान्ति या कोलाहल नहीं था। पशु-पक्षी वैर-भाव परित्याग कर एक साथ वनमें विचरण करते थे। बाघ और बकरी सांप और नेवले, कबूतर और बाज वैर-भावसे शून्य होकर स्वच्छन्द विचरण करते थे। तात्पर्य यह कि महामुनि विश्वामित्रके तप-प्रभावसे समस्त वनस्थली सात्विकता धारण किये हुए थी।

इसी समय इन्द्रकी भेजी हुई मेनका, स्वर्गलोकसे उतर कर इस कपोत-कूजित प्रशान्त वनमें उपस्थित हुई। महामुनि विश्वामित्र अखण्ड-समाधि लगाये बैठे थे। मुनिके तप-तेजसे चमकते हुए मुख-मण्डलको देख कर मेनकाका हृदय कांपने लगा ! मेनकाने एक वार

शिर झुकाकर मुनिराजको मौन भावसे ही प्रणाम किया और इधर-उधर घूमने लगी। देवराज इन्द्रके भेजे हुए कामदेव और वायुदेवता भी मेनकाके पीछे पीछे आये थे। उनके आगमनसे क्षणभरमें देखते ही देखते निस्तब्ध और बीहड़ वनस्थली, दूसरे ही रूपमें परिणत हो गई। समस्त वनमें वसन्तकी बहार खिल उठी। सभी वृक्ष और लतायें पुष्प और पल्लवोंसे शोभित हो उठे। मन्द मन्द सुगन्ध वायु बहने लगा। कोकिल-कण्ठी पक्षी अनेक प्रकारसे कलरव कर प्रशान्त वन-प्रदेशको अपने मधुर रवसे मुखरित करने लगे। कहीं कबूतर उड़ते, कहीं मृग श्रेणीबद्ध होकर भागते, कहीं मोर नाचते दृष्टिगोचर होने लगे। वसन्त-विकाससे समस्त प्रकृति प्रफुल्लित हो उठी। मेनकाने देखा कि मेरे सहायकोंने तो अपना जौहर दिखा दिया, अब मुझे भी अपना कर्तव्य-पालन करना चाहिये। सुतरां मेनका भी अनेक प्रकारसे हास-विलास और क्रीड़ा-कौतुक करने लगी। मेनका नृत्य करती हुई अपने कोकिल कण्ठसे मधुर गान गाकर वीणाकी झन्कार करने लगी। इसी समय मेनकाके कोकिल-कण्ठसे निकली हुई सुधा-समान सङ्गीत-लहरी महामुनिके कानमें गूंज उठी। उनका मन चञ्चल हो गया। ध्यान नष्ट हो गया! समाधि भङ्ग हो गई। सहसा आपसे आप आंखें खुल गईं।

आंखें खोलते ही उन्होंने देखा कि वनश्रीने अपूर्व शोभा धारण कर ली है! चारों ओर सरस वसन्तका वैभव-विकाश हो रहा है। और उनके सामने एक अपूर्व रूप-लावण्यमयी रमणी-मूर्ति खड़ी प्रकृतिको वसन्तका सौन्दर्य प्रदान कर रही है। रमणीके रूप-लावण्य सुधा-समुद्रकी अगाध जलराशिको अभी तक मुनिराज विश्वामित्र एक दृष्टिसे देख रहे थे, कि इसी समय इन्द्रके भेजे हुए वायु-देवताने बड़े वेगसे पवन सञ्चार कर, उस स्वर्गीय रमणीके वस्त्राञ्चलको

उड़ाना आरम्भ कर दिया। मेनका पवनके उत्पातसे अपनेको बचाने के लिये बड़ी सरलतासे अपने वस्त्राञ्चल समेटने लगी। परन्तु उसकी रमणी-सुलभ इस सरलता मिश्रित चञ्चलताने महामुनिके चित्तको चञ्चल कर दिया। वे उससे एक बार प्रेम-सम्भाषण करने के लिये अधीरसे हो उठे। महामुनिने मेनकाको बुलाया परन्तु वह भयसे कांप उठी। परन्तु उसने ज्योंही आनन्द मिश्रित प्रेम-आह्वान की ओर दृष्टि उठा कर देखा, तो उसका समस्त भय और सङ्कोच दूर हो गया। उसने समझ लिया कि तीर काम कर गया। महामुनिकी अखण्ड समाधि भङ्ग हो गई! तपस्या नष्ट हो गई। सुतरां मेनकाने सुअवसर देख अपने सभी अस्त्रोंका सञ्चालन आरम्भ किया! महामुनि उसके हावभाव और कटाक्ष-निक्षेपसे घायल हो उस पर मोहित हो गये। जप-तप सब नष्ट हो गया! समाधि समाप्त हो गई और महामुनि विश्वामित्रने अन्तमें मेनकाको पत्नी-रूपमें ग्रहण करके जङ्गलमें ही मङ्गल करना आरम्भ कर दिया।

निर्जन वन, उनका लीला निकेतन बन गया। नव-दम्पति, नई उमङ्ग और नित्य नूतन उल्लाससे अपना समय व्यतीत करने लगे। इसी प्रकारसे बहुत सा समय व्यतीत हो गया। इन्द्रके हृदयको अपने घोर तपसे कपानेवाले विश्वामित्र, अप्सरा मेनकाके इशारे पर नाचने लगे!

इसी प्रकारसे कुछ समय व्यतीत हो जाने पर मेनका गर्भवती हुई। नौ मास समाप्त होनेपर मेनकाने एक परम रूपवती सुन्दरी कन्याको प्रसव किया। मुनि विश्वामित्र अपने तपस्या भङ्ग-रूपी वृक्षके इस फलको देखकर बड़े दुःखी हुए। वे मन ही मनमें पश्चात्ताप करने लगे कि मैंने धर्माधर्मका विचार न कर तपस्या और समाधिको तिलाञ्जलि दे तथा विवेक-ज्ञान-शून्य हो एक अज्ञात कुल-

शीला-रमणीके रूप पर मुग्ध होकर अपनी समस्त समाधि और जप तपको मिट्टीमें मिला दिया! सब गुड़ गोबर हो गया। परन्तु अब पश्चात्तापसे क्या लाभ? तीर कमानसे निकल चुका था।

देवराज इन्द्रका मन्सूबा पूरा हो गया। उनके तरकससे जो तीर शिकार मारनेके लिये निकला था, उसने काम तमाम कर दिया! अब मेनका मर्त्यलोकमें व्यर्थ क्यों रहे? यह सोच कर एक दिन मेनकाने समस्त वृत्तान्त आदिसे अन्त तक महामुनिको सुना कर कहा,—"लीजिये, महामुने, अब अपनी कन्याको लेकर लालन-पालन कीजिये, मैं तो अब स्वर्गलोकको जाती हूं।" मेनका की विचित्र बात सुनकर महामुनिकी आंखोंका पर्दा हट गया। उन्होंने अब पूरी तरहसे समझ लिया कि देवराज इन्द्रने ही यह षड्यन्त्र रच, मुझे नारीके रूप-जालमें फंसा कर योग-भ्रष्ट किया है। विश्वामित्र चौंक पड़े! उन्हें ऐसा मालूम पड़ा जैसे मोहनिद्रा भङ्ग हो गई हो। अन्तमें बड़ी कठिनतासे अधीर होकर बोले,—"मेनका, मैं यद्यपि भाग्यवश इस बालिकाके जन्मका कारण अवश्य हुआ हूं, तथापि तुम उसकी माता हो, तुम्हें अपना लालन-पालनका यह मातृ-कर्तव्य स्वयं पालन करना चाहिये। इन्द्रके षड्यन्त्रमें शामिल होकर तुमने मेरे व्रतको भङ्ग किया है, मुझे अब और अधिक विरक्त मत करो। नहीं तो सम्भव है कि शीघ्र ही कुछ अनर्थ सङ्घटित हो। इसलिये अब तुम जाओ और शीघ्र मेरी आंखोंसे ओझल हो जाओ?"

महामुनि विश्वामित्रकी विचित्र भ्रकुटि चढ़ी देख मेनका भयभीत हो उठी। मुनिकी अद्भुत विरक्ति और अधीरताको देख कर मेनकाने अन्तमें वहांसे टल जाना ही श्रेयस्कर समझा। मन ही मन अनेक प्रकारके तर्क वितर्क करती हुई वह वहांसे चली गई। मेनकाने अन्तमें हिमालयसे निकल कर पर्वत-प्रदेशमें बहनेवाली मालिनी नदीके किनारे



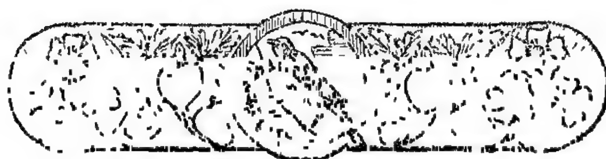
"लीजिये महाराज, अब आपनी इस कन्याका लालन-पालन कीजिये।" पृष्ठ १४

पहुंच कर सद्य-जाता कन्याको वहीं छोड़ दिया और स्वयं कन्याकी मोह-ममता छोड़ कर स्वर्गलोकको चली गई !

माता-पिता द्वारा परित्यक्ता अबोध कन्या, अकेली बनमें पड़ी रही। निरालम्ब और निराधार निर्जन वनमें नदी तट पर नितान्त बालिका को छोड़कर नौ मास तक गर्भमें धारण करनेवाली माता, स्वर्ग-सुख भोगनेके लिये स्वर्गलोकको चली गई ? और निष्ठुर पिताने भी उसे त्यागनेमें कुछ सङ्कोच न करके मोह-ममता सबको एक बार ही तिलाञ्जलि दे दी, जिसने विवेक-शून्य हो नारीके रूप-जालमें फंस कर स्वयं अपना तप-भङ्ग किया। परन्तु भाग्यका विधि-लेख अखण्डनीय है। उसे मेटनेवाला कौन है ? विश्वामित्र जैसे महातपस्वीका मेनकाके साथ असम्भव-संयोग करानेवाले विधि-लेखको कोई न मेट सका, तो निरालम्ब बालिकाके जीवनको ही फिर कौन नष्ट कर सकता था। अनाथोंके नाथ, दीनबन्धु, दुःखियोंके सहायक और निरालम्बोंके अवलम्ब भगवान्ने उस बालिकाकी भी अपने दीर्घबाहू प्रसारित कर रक्षा की।

निरालम्ब और निराधार कन्या, मालिनी नदीके तट पर अरक्षित पड़ी थी। इसी समय पासके तपोवनमेंसे स्नान करनेके लिये महामुनि कण्व उधर निकल आये। वे जब घाटपर पहुंचे तो देखते क्या हैं कि पक्षियोंका बड़ासा एक दल किसी चीजको अपने पङ्खोंके नीचे छिपाये बैठा है। वे कौतूहलवश जरा आगे बढ़े। उनका आगेकी ओर बढ़ना था, कि समस्त पक्षी भयसे उड़ गये और एक अद्भुत रूप-राशि-युक्ता शिशु-कन्या पर मुनिकी दृष्टि पड़ी। मुनि-कण्वने निरालम्ब और निराधार कन्याको उठा लिया उन्होंने समझा कि भगवान्ने रक्षा करनेके लिये ही हिंसक पशुओंसे बचानेके लिये पक्षियोंके परोंके नीचे छिपाया और इसका लालन-पालन करनेके

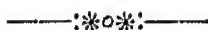
लिये अकस्मात् इस समय मुझे यहां भेजा है।—बालिका जब तक पक्षियोंकी रक्षामें थी, तब तक चुप-चाप पड़ी थी, किन्तु मुनि कण्व-की गोदमें आते ही शिशु-सुलभ-रुदन करने लगी। इस बाल्य-सुलभ करुण-क्रदनको सुनकर मुनि-कण्वके सरल अन्तःकरणमें और भी प्रीति तथा करुणाका सञ्चार हो आया। बड़े प्रेम और उत्साह तथा आनन्दसे मुनि-कण्व, उस बालिकाको गोदमें उठा अपने आश्रम में ले आये और अपनी कन्याकी तरहसे उसका लालन-पालन करने लगे। उनके यत्न और सेवा-शुश्रूषासे पाली हुई कन्या; परम सुख और आनन्दसे जीवन-पथमें अग्रसर होने लगी। 'शकुन्त' अर्थात् पक्षियोंने उसकी निरालम्बावस्थामें रक्षा की थी, इस लिये मुनि कण्वने उस बालिकाका नाम 'शकुन्तला' रखा।



द्वितीय-परिच्छेद।



शकुन्तलाका बाल्यकाल।



शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरहसे शकुन्तला दिन पर दिन बढ़ने लगी। वनवासी ऋषि-मुनियोंकी कन्याओंका जैसा पालन-पोषण होता है, उनको जैसा खाने-पीने और पहननेको मिलता है, शकुन्तलाको कभी उनका अभाव नहीं हुआ। वनके सभी स्वादिष्ट कन्द मूल-फल और निर्झरिणी नदियोंका शुद्ध निर्मल जल तथा ऋषि-मुनियोंके अग्नि-होत्रसे समस्त वन-प्रदेशमें फैली हुई धूमराशिसे पवित्र वायुका सेवन करती हुई शकुन्तला, बड़े आनन्दसे रहने लगी। वह इस वन-प्रदेशको अपनी जन्म-भूमि और इसी तपोवनमें रहनेवाली ऋषि-मुनियोंकी पत्नियोंको माता और बालक-बालिकाओंको बहन और भाई समझती थी। महर्षि कण्व उसके पालनकर्त्ता पिता थे। तपोवनकी स्वाभाविक पवित्रता और मुनि-बालक-बालिकाओंके सहवाससे शकुन्तलाका मन और स्वभाव एकदम सात्विक, सरल और आडम्बर-शून्य था। वल्कल-वस्त्र परिधारण और शुद्ध सात्विक भोजनसे उसकी मनोवृत्ति नितान्त सरल और प्रकृति सात्विक हो गई।

इसी प्रकारसे शकुन्तलाका बाल्यकाल समाप्त हो गया। मुनि-कण्वके लालन-पालन और सहवासियोंके प्रेम तथा प्रसन्नतामें लालित-पालित होते हुए शकुन्तलाने कभी माता पिता और कुटुम्ब, परिजनोंका अभाव अनुभव नहीं किया। इसी प्रकारसे धीरे-धीरे शकुन्तलाने बाल्यकालको समाप्त करते हुए यौवनमें पदार्पण किया।

महामुनि कण्व, त्यागी-तपस्वी और संसार-विरक्त थे, परन्तु शकुन्तला उनके द्वारा लालित-पालित होकर यौवनावस्थामें प्रवेश कर रही थी, इसीलिये संसार-त्यागी कण्व मुनिको भी शकुन्तलाके लिये योग्य वर तलाश करनेकी चिन्ता सताने लगी।

+ + + +

जिस समयकी हम बात कह रहे हैं, उस समय भारतवर्षमें दुष्यन्त नामके राजा चक्रवर्ती सम्राट् थे। भारतके नव-खण्ड और चौदह भुवन तथा समस्त संसारकी मनुष्य जाति उनके अधीन थी। राजा दुष्यन्त जैसे प्रतिभाशाली विद्वान् थे, वैसे ही परम धार्मिक और न्यायकारी परमशक्ति—सम्पन्न सम्राट् थे। उनके राज्यमें न कहीं चोर थे, न डकैत। समस्त राज्यमें सुख और समृद्धिका बोलबाला था। कहीं कोई दुराचारी नहीं था, कुलटा स्त्रियां तो कहांसे होतीं। भूखे और अनाथ तथा रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करना लोग अपना सौभाग्य समझते थे। महाराज दुष्यन्त रामकी तरहसे लोकप्रिय, सूर्यके समान तेजस्वी तथा विष्णुके समान बल-विक्रमशाली थे।

एक बार राजा दुष्यन्त शिकार खेलनेके लिये अपने साथियोंके सहित वनको चले। साथमें रथ, घोड़े और अस्त्र-शस्त्र सभी सामान रखा गया। बड़े समारोहसे राजा दुष्यन्त शिकार खेलने चले। जिस वनमें राजा दुष्यन्त घुसते, अपने बल-विक्रमसे चलाए हुए तीक्ष्ण बाणोंसे हिंसक पशुओंको मार डालते। इसी प्रकारसे अनेक गहन वनोंको पशुओंसे रिक्त करते हुए राजा दुष्यन्त, एक दिन एक परम रमणीय सुन्दर वनमें जा पहुंचे। राजा दुष्यन्तने देखा कि वन क्या है, नन्दन-कानन है। जगह जगह-फलोंके भारसे भूमि पर झुके हुए अनेक वृक्ष खड़े हैं। चारों ओर अनेक प्रकारकी पुष्प-कलिकायें कुसुमित होकर अपनी मन्द सुगन्धसे वनस्थलीको सुगन्ध गंध-

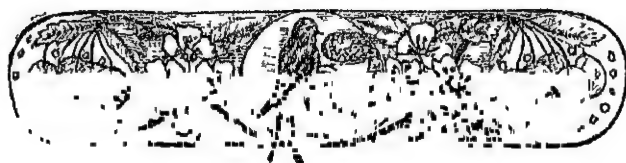
मय कर रही हैं। हरी भरी सुदीर्घ लतायें, ऋषि-मुनियोंके पर्णकुटी-रोंको आच्छादित किये हुए हैं। कहीं मधु-लोभी भंवरे सरस गुञ्जार कर रहे हैं। कहीं कोयल-मोर-पपीहे आदि पक्षी, नाना प्रकारके कल-रव करके प्रशांत वनस्थलीको मुखरित कर रहे हैं। कहीं मधुर मुसक्यानसे झूम झूमकर मोर नाच रहे हैं। राजा दुष्यन्तने जब इस परम रमणीय वनमें प्रवेश किया, तो पवनदेव वनमें वायु सञ्चार-कर राजा दुष्यन्त पर पुष्प वर्षाने लगे। नन्दनकाननके समान वनके वृक्ष, हिल-हिल कर राजाका स्वागत करने लगे।

इस समय एक मृगको देख राजा अपने रथको लिये हुए मालिनी-नदीके तटपर उपस्थित हुए। वह मृग बड़ा ही चञ्चल था। वह बार बार निशानोंको बचाता हुआ मालिनी नदीके तट तक राजाको घसीट लाया। वह मृग वास्तवमें वहांके वनवासियों द्वारा पारिपालित था। मृगको बहुत दूर भागते देख, राजा दुष्यन्तने क्रोधमें आकर ज्यों ही एक शरका सन्धान किया, त्यों ही तपोवनके मुनिबालकोंने चिल्लाकर कहा,—"सावधान राजन्! सावधान! यह मृग पालतू है और फिर इस वनमें पशु-पक्षियोंके मारनेकी आज्ञा भी नहीं है।" राजा मुनि-बालिकोंकी बात सुनकर वहीं ठिठक गये और जो बाण धनुष पर चढ़ाया था, उसे उतार लिया। इतनेमें ही मुनिबालक जरा आगेकी ओर बढ़कर बोले,—"महाराज, आप तो महाबाहू शक्ति-सम्पन्न, बल-विक्रमशाली चक्रवर्ती सम्राट् हैं! इन तृण-भोजी निरीह मृगोंको मार कर आपको क्या मिलेगा? राजाके अस्त्र शस्त्र दीन दुःखी और दरिद्रोंके दुःख परित्राणके लिये हैं, न कि निरपराध निरीह जीव-जन्तु-ओंको मारनेके लिये?" मुनिबालकोंकी पवित्र और मधुर वाणी सुनकर राजा पुलकित हो उठे और उन्होंने रथसे उतर कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। मुनिबालकोंने राजाको अत्यन्त विनीत और

नम्र देख कर आशीर्वाद देते हुए कहा,—"महाराज, आपके विनीत वचनों और मधुर आलापको सुनकर हम लोग बहुत प्रसन्न हुये। आप जैसे शक्तिशाली चक्रवर्ती सम्राट्के लिये यह विनयशीलतापूर्ण सुजनता उपयुक्त ही है। हम आपको अन्तःकरणसे आशीर्वाद देते हैं कि आपके महायशस्वी प्रतापी पुत्र उत्पन्न हो जो समस्त पृथ्वीका एक-छत्र सम्राट् हो।" उत्तरमें राजाने कहा,-"भगवन्, हम क्षत्रियोंका अच्छा बुरा सब आप पूज्य ब्राह्मणोंके आशीर्वाद पर ही निर्भर है आपकी पवित्र वाणीको सुनकर मैं धन्य-धन्य हो गया हूं।" राजाकी बात समाप्त होने पर मुनिबालकोंने सामनेके आश्रमों की ओर संकेत कर कहा,—"महाराज, सामने मालिनी नदीके पवित्र तट पर हमारे गुरु महामुनि कण्वका आश्रम नजर आता है। यदि आपके कार्यमें कोई विघ्न न होता हो, तो आज वहां ही आतिथ्य स्वीकार कीजियेगा। इससे एक तो हम अपने धर्मात्मा राजाका सत्कार कर अपनेको धन्य समझेंगे दूसरे महाराज, आश्रमकी स्वाभाविक शान्तिको देखकर सुख अनुभव कर सकेंगे।" ऋषिबालकोंका निमन्त्रण स्वीकार करते हुए राजाने पूछा,—"कहिये मुनिगण, आपके गुरू मुनिश्रेष्ठ कण्व तो आश्रममें ही उपस्थित हैं?"

"नहीं महाराज, गुरु कण्व तो अपनी पुत्री शकुन्तलाके किसी दुष्ट-ग्रहके शमनार्थ सोमतीर्थ पर गये हुए हैं, परन्तु इससे क्या? ऋषि कण्वकी पुत्री शकुन्तला तो वहां मौजूद ही है। आजकल उनकी अनुपस्थितिमें वही समागत लोगोंका आतिथ्य करती हैं।" यह कह कर मुनिबालक उनसे विदा हुए और राजा दुष्यन्त भी रथ आगे बढ़ा कर उनके पीछे पीछे चलने लगे। थोड़ी दूर आगे बढ़कर राजा वनकी शोभा देखकर सारथिसे उसकी खूब प्रशंसा करने लगे और आश्रमको बिल्कुल समीप देखकर स्वयं रथसे उतर गये और

सारथिसे बोले, "हे सारथे, मैं अपने अस्त्र शस्त्र यहां रख जाता हूं तब तक तुम घोड़ोंको कुछ खिलाओ पिलाओ और स्वयं भी स्वस्थ हो जाओ।"



तृतीय-परिच्छेद ।

दुष्यन्त-दर्शन ।

तपोवनमें प्रवेश करते ही राजाकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। तपोवनमें विचित्र विवाह-सूचक मंगल-शकुन होते देख, राजा आश्चर्य चकित हो विचारने लगे कि यह अद्भुत व्यापार क्या हो रहा है ? प्रथम तो मैं चक्रवर्ती सम्राट्, दूसरे क्षत्रिय-सन्तान। मेरे विवाहका यहां क्या संयोग ! परन्तु भवितव्यताका द्वार समस्त संसारमें खुला हुआ है। कहां कब क्या हो जाय, कुछ नहीं कहा जा सकता। इस प्रकारसे विचार करते हुए राजा तपोवनके कण्व-आश्रमकी ओर आगे बढ़ रहे थे, इसी समय उनके कानमें किसी रमणीका स्वर सुनाई पड़ा। एक स्त्री दूसरीसे कह रही थी,—"प्रिय सखी, ज़रा इधर तो आओ इधर !" राजा चकित दृष्टिसे इधर उधर देखते हुए आगे बढ़ रहे थे, इतनेमेंही जरा और आगे बढ़कर क्या देखते हैं कि तीन सुकोमल—बाल्य-वयस्का-बालिकायें हाथमें छोटी छोटी कलशियां लिये पुष्प-लताओं और छोटे छोटे पौधोंमें पानी सींच रही हैं। उनके अद्भुल रूप-लावण्यको देखकर राजा मन ही मनमें विचार करने लगे कि इन ऋषि-बालिकाओंकी कोमलता और अनुपम सुन्दरताको देखकर आश्चर्य होता है। सम्भवतः बड़े बड़े राजा महाराजाओं और स्वयं मेरे अन्तःपुरमें ऐसी रूपसी महिमा-मण्डिता महिलायें न होंगी ! देखता हूं कि ये ऋषि-कुमारियां अपने अद्भुत रूप-यौवनसे इन पुष्प-लताओंको भी लज्जित कर रही हैं। इस प्रकारसे

मन ही मनमें आश्चर्य प्रकट करते हुए राजा दुष्यन्त, एक लता-गुल्म की ओटमें छिप कर उनकी गति-विधिको देखने लगे।

इधर कण्व-कन्या शकुन्तला, अपनी प्रिय अनुसूया और प्रियम्वदा नामकी सखियोंके साथ पुष्पलताओंमें पानी सींच रही थी। तीनों सखियां परस्परमें नाना प्रकारका हास-परिहास करती हुईं अपना काम कर रही थीं। इसी समय हंसीमें अनसूयाने कहा,—"प्रिय सखी शकुन्तला, मालूम होता है कि तुम्हारे पिता मुनि-कण्व, तुमसे अधिक आश्रमके इन फूल-पौधों पर ही प्रीति रखते हैं, नहीं तो तुम्हारे जैसी कुसुम-कलीके समान सुकुमारी कन्यासे यह काम क्यों करवाते ?" उत्तरमें जरा मुसकराकर शकुन्तला बोली,—"प्रिय सखी, पिता कण्व ही मुझसे इन पौधोंको नहीं सिंचवाते हैं, किन्तु मुझे स्वयं इनसे कुछ ऐसा प्रेम हो गया है, कि मैं इनसे सहोदर भाई कीसी प्रीति करने लगी हूं। इस लिये उनके कहने सुननेकी प्रतीक्षा न कर मैं तो स्वयं इनके सींचनेका लोभ संवरण नहीं कर सकती।" शकुन्तलाकी बात अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि बीचमें ही प्रिय-म्वदा बोल उठी,—"सखी शकुन्तला, ग्रीष्मऋतुमें जिन वृक्षोंपर पुष्प प्रस्फुटित होते हैं, वे तो सींचे जा चुके, चलो अब उन पौधोंको भी सींच डालें जिनके फूल खिलनेकी मौसम बीत चुकी है।" प्रियम्वदाकी बात समाप्त होते न होते तीनों सखियां बड़ी उत्सुकतासे मुर्झाये हुए पुष्प-वृक्षोंको सींचनेके लिये आगे बढ़ीं।

राजा ओटमें खड़े यह सब दृश्य देख रहे थे। ऋषि बालिकाओंके इस क्रीड़ा-कौतुकको देखकर वे आनन्दित भी हुए और चकित भी। वे नाना प्रकारकी जल्पना-कल्पना करते हुए मन ही मन कहने लगे, "मालूम होता है, यही मुनि कण्वकी कन्या शकुन्तला है। महामुनि कण्व तो बड़े विचारशील हैं, फिर उन्होंने इस कोमल कमनीय-कांति

को मलिन करनेके लिये ये कठोर वल्कल-वस्त्र पहना, इसके रूप-यौवनको क्यों ढांप दिया ? पर नहीं मैं ही भ्रममें हूं। वल्कल वस्त्रोंसे कहीं सुन्दरता नष्ट हो सकती है ? खिला हुआ कमल कीचमें भी अपनी अद्‌भुत छटा दिखाता है !

"पूर्णिमाका चन्द्रमा, कलङ्क-कालिमाकी प्रत्यक्ष छायाके साथ भी भला मालूम होता है। जिसे भगवान्‌ने रूप दिया है, उसके लिये रेशमके जरीदार कपड़े या वल्कल-वस्त्र समान ही हैं। स्वाभाविक रूप यौवनको जीर्ण-शीर्ण वस्त्र क्या कभी ढांप सकते हैं ?" राजा इसी प्रकारकी अनेक विचार-तरंगोंमें बहे जा रहे थे और वे रूपसी तीनों सखियां आगे बढ़ी जा रही थीं। जाती-जाती तीनों सखियां एक आमके वृक्षके नीचे खड़ी हो गईं। प्रियम्वदाने शकुन्तलाके कपोल पर चुटकी भरते हुए कहा,—"सखी, मालूम होता है—उस आम्र-तरु का पुष्प-लतासे संयोग हो रहा है।" उत्तरमें शकुन्तला बोली,—"इसी लिये तो तेरा नाम सखी, सोच-समझकर 'प्रियम्बदा' रखा गया है।" तीनों सखियोंके हास-परिहासको लक्ष्य कर राजा मन ही मन कहने लगे,—"ठीक बात ही तो है। शकुन्तलाके अधरों पर नव-पल्लवोंकीसी शोभा विराज रही है। दोनों बांहें ऐसी प्रतीत होती हैं, जैसे कोमल विटप हों और नवयौवन, प्रस्फुटित पुष्पकी तरहसे समस्त अंगोंमें प्रकट हो रहा है।"—इसी समय अनसूयाने शकुन्तलाके कन्धे पर हाथ रख कर कहा,—"देखो शकुन्तला, देखो ! वह वनतोपिणी-नव-मालिका उस आम्र-तरु पर ऐसी लिपट गई है, जैसे स्वयम्बरा हो गई हो।" शकुन्तला जरा और आगे बढ़ कर बोली,—"हां सखी, तुमने और भी एक बात देखी कि नव-मालिका खिले हुए फूलोंसे लज्जित हो रही है और आम्र-तरु, फलोंके भारसे नीचेकी ओर झुक रहा है।" शकुन्तला अभी अपनी बात पूरी भी न

कर पायी थी कि बीचमें ही उसकी बातको काट कर प्रियम्बदा अनसूयाका हाथ पकड़ कर बोली,—"अनसूया, क्या तू जानती है कि शकुन्तला क्यों उत्सुकता पूर्ण दृष्टिसे इस नव-मालिकाको देखा करती है ? शकुन्तला मन ही मन सोचा करती है कि नव-मालिका तो अपने मनके माफिक पति पा गई, उसी प्रकारसे यदि मैं भी पा जाती तो अच्छा होता !" प्रियम्वदाकी बातको वीचमें ही काट कर शकुन्तला बोली,—"नहीं सखी अनसूया, प्रियम्बदा यह अपने मनकी बात कह रही हैं ।"

कुछ दूर आगे बढ़ कर आनन्दित मनसे शकुन्तला माधवी-लता की ओर संकेत कर बोली,—"सखी ले सुन ! मैं तुझे नया समाचार सुनाती हूं । ले देख, इस माधवी-लता पर शिरसे पैर तक कलियां निकल आई हैं ।" उत्तरमें प्रियम्बदा बोली,—"और ले मैं भी तुझे नया समाचार सुनाती हूं, कि तेरा वर आनेवाला है और शीघ्रही तेरा विवाह होगा !" ऊपरके मनसे क्रोध प्रकट करती हुई शकुन्तलाने प्रियम्बदाको धक्का देकर कहा,—"अरी जा ! क्या बहकी हुई बातें करती है । मुझे तेरी ये व्यर्थकी बातें अच्छी नहीं लगतीं ।" फिर प्रियम्बदाने कपोल पर एक चुटकी भर कर कहा,—"चल ! इतना इतराती क्यों है ? मैं क्या तुझसे हंसी करती हूं । मैंने तो पिताके मुंहसे सुना है कि माधवी-लताका फूलना-फलना और कुसुमित होना तेरे भावी मङ्गलकी सूचना है ।" प्रियम्वदाकी बात सुनकर अनसूया भी बोल उठी, कि "ओहो ! यह माधवी-लताकी सींचाई इसी लिये हो रही है और मुझे मालूम नहीं था शकुन्तलाका माधवी-लता पर ही इतना अनुराग क्यों है ?"— शकुन्तला भला इतनी टीका-टिप्पणी सुन कर कब चुप रहनेवाली थी । वह बोली,—"माधवी-लताको मैं बहनकी तरहसे प्यार करती हूं ! इसीलिये उसको इस प्रकारसे सींचती और उस पर प्रेम रखती हूं ।"

तीनों सखियां फिर माधवी-लताको सींचने लगीं। एक भंवरा उसकी नवकुसुमित-कलियों पर रस-पान करता हुआ गुञ्जन कर रहा था। जल-सिंचन आरम्भ होते ही वह उस परसे उड़ कर शकुन्तला-के मुखको ही विकसित-कुसुम समझ, बैठनेकी तय्यारी करने लगा! शकुन्तलाने उसे बार बार दुतकारा, परन्तु वह उसके अधरों पर ही आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगा। भंवरेको किसी प्रकारसे भी हटता न देख कर शकुन्पला बोली,—"देखो न सखी, यह पापी भंवरा तङ्ग कर रहा है, उड़ता ही नहीं!" उत्तरमें दोनों सखियां हंसकर बोलीं,—"सखी, इतनी सामर्थ्य किसमें है जो पापी भंवरेको दूर भगा सके। सखी, तू दुष्यन्तको पुकार! पापीको दण्ड देना राजाका ही काम है।" सखियोंकी बात अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि भंवरा और भी उत्पात करने लगा, जिससे घबड़ा कर शकुन्तला फिर चिल्ला कर साहाय्य-भिक्षा मांगने लगी,—परन्तु सखियोंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वे खिलखिला कर हंसती हुई कहने लगी,—"सखी, राजा दुष्यन्तको बुला, वही तेरी रक्षा करेंगे।"—शकुन्तला सखियोंकी बात सुनकर भी आगेकी ओर भागती जाती थी। इसी समय वृक्षोंकी ओटमें छिपे हुए राजा दुष्यन्तने सोचा कि प्रकट होने का इससे अच्छा सुअवसर और नहीं मिलेगा। परन्तु अपना परिचय कैसे दूं। इसी प्रकारकी बातें सोचते सोचते अन्तमें राजा साहस कर आगे बढ़े और गर्ज कर बोले,—"पुरु-वंशीय दुष्यन्तके जीवित रहते किसकी शक्ति है जो किसीको कोई कुछ दुःख दे सके!" एक अपरिचित राज पुरुषको सहसा वहां उपस्थित देख, तीनों सखियां बड़ी चकराईं। परन्तु बड़े सङ्कोचके साथ शिष्टाचार दिखाती हुई अनसूया बोली,—"नहीं महाशय, ऐसी कोई बात नहीं है। हमारी यह सखी माधवी-लताको खींच रही थी, इसी समय एक प्रमादी

भंवरा इसको तंग करने लगा । इससे वह घबरा गई ।" इसपर राजाने जरा हंसकर शकुन्तलासे पूछा कि,—"कहिये, तपस्या तो ठीकसे हो रही है न ?" शकुन्तला इसका क्या उत्तर देती ? वह लज्जावश मौन धारण किये रही । परन्तु शकुन्तलाको मौन देख अनसूयासे न रहा गया । वह शिष्टाचारकी रक्षाके लिये बोली,—"हां महोदय, तपस्या सानन्द सम्पन्न हो रही है । आप जैसे यशस्वीके दर्शन से हमारी तपस्या और भी सफल हुई है ।" अनसूयाकी बात समाप्त हो जाने पर प्रियम्बदाने शकुन्तलाको सम्बोधन कर कहा,—"शकुन्तला, जा आश्रमसे अर्घ्य-पात्र ले आ । जल तो इस कलशीमें है ही, इसीसे काम हो जायेगा ।"

प्रियम्बदाकी बात समाप्त भी नहीं हो पाई थी कि बीचमें ही राजा दुष्यन्त बोले,—"नहीं, नहीं ! मैं आपके सुनृत-मधुर भाषण और शिष्टाचारसे ही अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं । अब और अधिक कष्ट करनेकी जरूरत नहीं ।" अनसूयाने कहा,—"अच्छा खैर रहने दीजिये, परन्तु इस कुशासनपर बैठ कर जरा सुस्ता तो लीजिये । न जाने आप कितनी दूरसे चलकर आ रहे हैं । उत्तरमें राजा दुष्यन्त बोले कि,—"आप लोग भी जल-सिञ्चन करती हुई हार गई होंगी, सो जरा बैठकर विश्राम कर लें ।"

अतिथिका अनुरोध मान सबकी-सब सखियां, राजाके सामने ही बैठ गयीं । शकुन्तलाका मन, न जाने क्यों, इस अपरिचित अतिथि का नाम, धाम, जाति और व्यवसाय जाननेके लिये बड़ा उत्सुक होने लगा । तपोवनमें इतने काल तक ऐसा भाव उसके हृदयमें कभी नहीं उत्पन्न हुआ था, आज आपसे आप क्यों उत्पन्न होने लगा, यह सब वह न समझ सकी । सबके बैठ जाने पर राजाने कहा,—"तुम तीनों ही रूप-वयस और शील स्वभावमें एक सी हो

इसीसे तुम लोगोंमें इतना प्रेम हो गया है ?" इसी समय राजाकी आंख बचाकर प्रियम्वदाने धीरेसे अनसूयाके कानमें कहा,—"सखी, यह कौन है ? कहांसे टपक पड़ा। जरा पूछ तो सही। बातें तो ऐसी कर रहा है, मानों हम लोगोंका पहलेका जाना-पहचाना हुआ हो। यह तो प्रकृतिमें गम्भीर, बातचीतमें चतुर और स्वभावमें बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है।" अनसूयाने कहा,—"मेरे मनमें भी तो यही कौतूहल है। अच्छा ठहर जा, मैं पूछे लेती हूं।" यह कह, उसने राजासे कहा,—"क्यों महाशय, आपने किस राजवंशको अलंकृत किया है ? आप आज किस देशको वियोगी बनाकर यहां आये हैं ? ऐसे सुकुमार होकर भी क्यों तपोवनोंमें भटकते फिरते हैं ? इन प्रश्नोंके उत्तर दीजिये। हम लोगोंके मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। आपकी सीधी-सादी और मीठी-मीठी बातें सुनकर ही मैंने आपसे ऐसा प्रश्न पूछनेका साहस किया है। आशा है, कि आप कृपा कर शीघ्र बतलायेंगे।" अनसूयाकी यह प्रश्नावली सुन, शकुन्तलाने अपने मनको समझाते हुए कहा,—"हृदय, इतने उतावले क्यों होते हो ? ठहरो, तुम जो कुछ जानना-सुनना चाहते हो, अनसूयाने वही तो पूछा है !"

राजाने अनसूयाके प्रश्न सुन, मन ही मन विचार किया, कि अभी अपना असल परिचय दे देना ठीक नहीं, अतएव उन्होंने कहा,—"मैं इस राज्यका धर्माधिकारी हूं। राजाकी आज्ञासे तपोवनोंकी अवस्थाका परिचय प्राप्त करनेके लिये सर्वत्र घूमता-फिरता यहां आ पहुंचा हूं।" यह सुन, अनसूयाने कहा,—"हम लोगोंके बड़े भाग्य हैं, जो आप आज यहां पधारे।"

इसी तरहकी बातें चलती रहीं। राजा दुष्यन्त शकुन्तलाको देख मन ही मन मुग्ध होने लगे। उधर शकुन्तलाके मनमें राजाको देख

कर अनायासही प्रीतिके भाव उत्पन्न होने लगे। दोनोंके चित्त भीतर ही भीतर चञ्चल हो रहे थे। अनसूया और प्रियम्वदाने शकुन्तलाके इस नये भावको ताड़ लिया और मीठी-चुटकी लेते हुए कहा,—"सखी, आज पिताजी आश्रममें होते तो प्राण देकर पूजा करते !" शकुन्तलाने झूठा क्रोध दिखाते हुए कहा,—"तुम दोनों न जाने अपने मनमें क्या बात रखकर ऐसा कह रही हो ? मैं तुम्हारी बातें न सुनूंगी। चुप रहो !" इसी समय राजाने पूछा,—"अच्छा, तुम लोग यह तो बतलाओ कि महर्षि कण्व तो आजन्म ब्रह्मचारी हैं, फिर तुम्हारी सखी उनकी कन्या कैसे हुईं ? मैं इनका जन्म-वृत्तान्त सुननेके लिये बड़ा उत्सुक हूं।" यह सुन अनसूयाने कहा,—"महाशय, आपको मालूम ही है, कि शास्त्रोंमें पांच प्रकारके पिता माने गये हैं। पिता—कण्वने शकुन्तलाका पालन कर इसे जीवन-दान दिया है, अतएव न्याय और धर्मसे वे ही इसके पिता हैं। नहीं तो वैसे हमारी सखी राजर्षि विश्वामित्रके औरस और स्वर्गीय अप्सरा मेनकाके गर्भसे पैदा हुई है। बालकपनमें ही माता-पिताने इसे परित्याग कर मृत्युके हवाले कर दिया था, पर भाग्यसे यह पिता कण्वके हाथोंमें पड़ गयी।" यह सुन राजा सोचने लगे,—"तभी तो ! यदि ऐसा न होता, और यह बालिका साधारण मानवी ही होती, तो ऐसा अलौकिक रूप-लावण्य कहांसे दिखाई देता ? बिजली आकाशमें ही चमकती है, पृथ्वी पर नहीं !"

सखियोंकी बातें सुन-सुन कर शकुन्तला और भी लज्जासे संकुचित हो अधोमुखी हुई जाती थी। यह देख प्रियम्बदाने शकुन्तला पर हास्यमय दृष्टिपात करते हुए राजासे कहा,—"आपकी भाव-भङ्गिसे मालूम होता है कि आप हमारी सखीके विषयमें और भी कुछ जानना चाहते हैं ?" यह सुनकर शकुन्तलाने राजाकी दृष्टि बचाकर छिपे-छिपे अंगुलीके इशारेसे प्रियम्बदाको डांट बताई।

राजाने कहा,—"तुमने ठीक समझा है। मैं सचमुच और भी कुछ पूछना चाहता हूं।" प्रियम्वदा बोली,—"तो फिर लजाते क्यों हैं ? पूछ ही क्यों न लीजिये ?" राजाने कहा,—"मैं यही पूछना चाहता हूं कि तुम्हारी सखी विवाह न होने तक ही तापस-व्रत धारण किये रहेगी अथवा जीवन भर इसी तरह हरिणोंके सङ्ग खेलती फिरेगी ?" प्रियम्वदा बोली,—"पिता कण्वने सङ्कल्प किया है कि यदि कोई रूप-गुणमें शकुन्तलाके योग्य वर न मिलेगा, तो वे शकुन्तलाको जन्म-भर क्वांरी ही रखेंगे।"

यह उत्तर सुन, राजा मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें आशा हो गयी, कि यह रत्न पाना एकदम असम्भव नहीं है। यदि भाग्य गवाही दे, तो वे उसे अपने हृदयकी अधीश्वरी बना सकते हैं। इसी समय शकुन्तला बनावटी क्रोध प्रकट करती हुई बोली,—"अनसूया, ले, मैं तो अब जाती हूं। मुझसे यहां बैठा नहीं जाता।" उत्तरमें अनसूयाने कहा,—"क्यों ? क्या बात हुई ?" इस पर शकुन्तला बोली,—"देख, प्रियम्वदाके जो ही मुंह पर आता है, वही बकती जाती है ! मैं अभी जाकर बुआ गौतमीसे सब बातें कह दूंगी।" अनसूया बोली,—"सखी, देख अभी तक अतिथिकी कुछ सेवा-शुश्रूषा नहीं हुई। आज तेरे ही ऊपर अतिथि-सेवाका भार है, क्योंकि पिताजी यहां नहीं हैं, अतएव तू इस प्रकार अतिथिको छोड़ कर न जा।"

परन्तु शकुन्तलाने इस ओर कान नहीं दिया और चल पड़ी। तब उसे अटका रखनेके लिये प्रियम्वदाने कहा,—"वाह ! चली कैसे जायेगी ? तुझ पर मेरा एक कलशी जल लेना बाकी है। कलशी देकर जाना। मैंने भरा है, फिर तू क्यों न भरेगी ? वसूल करके जाने दूंगी, योंही थोड़े छोड़ दूंगी ?" यह कहते हुए उसने शकुन्तला-

का आंचल पकड़ कर खींचा और उसे बलपूर्वक रोक रखा। शकुन्तला झुंझलाकर ऋण-परिशोध करनेके लिये कलशी उठाकर पानी लाने चली।

यह देख, राजाने प्रियम्बदासे कहा,—"तापस-कुमारी, वृक्षोंको सींचते-सींचते तुम्हारी सखी बहुत हैरान हो गयी है, अतएव पानी भरवा कर इन्हें और हैरान न करो। तुम्हारी सखीका ऋण मैं चुकाये देता हूं।" यह कह, उन्होंने अपनी अंगुलीसे एक अंगूठी उतार कर एक कलशी जलकी मूल्य-स्वरूप प्रियम्बदाके हाथमें दे दी। किन्तु अंगूठीमें खुदे हुए नामको पढ़कर अनसूया और प्रियम्बदाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा और वे परस्पर एक दूसरीका मुंह देखने लगीं। राजा भी भूल गये। अंगूठी देते समय उन्हें यह नहीं स्मरण रहा, कि उसपर उनका नाम खुदा हुआ है। भण्डा फूटनेकी सम्भावना देख, वे झटपट बोल उठे,—"अंगूठी परका नाम देख, तुम लोग अचम्भेमें न आना। मैं राजाका प्यारा नौकर हूं, इसीसे उन्होंने मेरी सेवासे प्रसन्न होकर अपने नामकी अंगूठी मुझे इनाममें दी है।"

प्रियम्बदा राजाका छल समझ गयी और बोली,—"तब तो इस अंगूठीको आपकी उंगलीसे उतरवा लेना ठीक नहीं है। आप इसे ले लीजिये। आपकी बात पर ही मैंने सखीको ऋणसे मुक्त कर दिया।" यह कह शकुन्तलाकी ओर फिर कर हंसती हुई प्रियम्बदा बोली,—"सखी शकुन्तला, जा! इन महाशयने अथवा राजाने तुझे ऋणसे मुक्त कर दिया। अब तू भले ही जहां जी चाहे वहां चली जा, अब कोई रोक-टोक नहीं है।"

शकुन्तला मन ही मन कहने लगी,—"न जाने क्यों इस आदमी को नयनोंकी ओट करनेको जी नहीं चाहता!" इसके बाद प्रियम्बदाको झिड़ककर बोली,—"मैं जाऊं या रहूं, इसमें तेरा क्या है?"

शकुन्तलाकी ओर देखते हुए राजा दुष्यन्त अपने मनमें सोचने लगे,—"इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि इस सुन्दरीके मनमें भी मेरी ही तरह चञ्चलता पैदा हो गयी है। कारण, न तो यह मेरी ओर देखती है, न मुझसे बातें करती है, परन्तु मेरी बातें कान लगाकर सुनती है। चार आंखें होते ही शिर नीचा कर लेती है, पर फिर मेरी ही ओर देखने लगती है। अन्तःकरणमें अनुराग पैदा हुए विना इस तरहका भाव नहीं देखा जाता।" राजा और तापस-कुमारियोंमें इसी तरह कथोपकथन हो रहा था, कि एकाएक बड़ा हो-हल्ला सुनाई दिया। सबने कान लगाकर सुना कि कुछ लोग चिल्ला चिल्लाकर कह रहे हैं,—"हे तपस्वियो! आज राजा दुष्यन्त अपने सैन्य-सामन्तोंके साथ शिकार खेलनेके लिये यहां आये हुए हैं, अत-एव आप लोग अपने अपने आश्रमके पशुओंकी रक्षाका प्रबन्ध करते जाइये! विशेषतः राजाका रथ देखकर एक जङ्गली हाथी भड़क गया है और इधर उधर उत्पात मचाता हुआ धर्मारण्यमें प्रवेश कर तपस्यामें विघ्न डाल रहा है।"

यह सुन, तापस-कन्याएं बड़ी व्याकुल हुईं। राजाने अपने मनमें सोचा,—"यह कैसी आफत है! क्या मेरे आदमी मेरी खोज में यहां तक चले आये और तपोवनमें ऊधम मचा रहे हैं? जो हो, इस समय तो चलकर उन्हें मना करना ही पड़ेगा।"

अनसूया और प्रियम्वदाने कहा,—"महाराज, जङ्गली हाथी वाली बात सुनकर हम लोगोंको बड़ा डर मालूम हो रहा है। अतएव यदि आप आज्ञा दें, तो हम लोग कुटिके भीतर चली जायें।" राजा बोले,—"अच्छा तुम लोग कुटिमें जाओ, मैं भी तपोवनका यह उप-द्रव दूर करनेकी चेष्टा करने जाता हूं।" प्रियम्वदाने कहा,—"महा-राज, फिर दर्शन दीजियेगा! आप अतिथि होकर हमारे यहां आये,

पर अभाग्यवश हमने आपका कुछ भी आदर-सत्कार नहीं किया, इसलिये हमें बड़ी लज्जा मालूम हो रही है।" राजा उत्तरमें बोले,— "लज्जाकी कौनसी बात है ? मैं तुम लोगोंके दर्शन और मधुर भाषणसे ही समस्त सत्कार पा गया हूं।" यह कह, राजा जाने लगे। सखियां भी उठ खड़ी हुईं। शकुन्तला सतृष्ण नेत्रोंसे राजा के रमणीय रूपको देखने लगी और राजा भी अपना मन बेहाथ कर चल पड़े। परन्तु उनका मन इतनी ही देरमें शकुन्तलामय हो गया था।



चतुर्थ-परिच्छेद।

राजा दुष्यन्त और माढव्य।

—:*:—

राजा शिकारके लिये चलते समय अपने प्रिय सखा, माढव्यको साथ लेते आये थे। राजाओंके मुंह लगे सहचर दिनरात राजसी-सुख भोग करते करते बड़े बिलासी और सुखाभिलाषी हो जाते हैं। अशन, वसन, शयन और उपवेशन आदि किसी काममें तनिक भी क्लेश होनेसे उनके प्राण व्याकुल हो जाते हैं। माढव्यका भी यही हाल था। वह बेचारा ब्राह्मण राजधानीमें पड़ा पड़ा मौजें मारा करता था, जबसे जङ्गलमें आया, तबसे शान्तिके साथ खाना-पीना भी मुहाल हो गया। अभी यहां है, तो अभी वहांकी यात्रा करनी पड़ जाती है। मारे क्लेशके बेचारा आरी आ गया।

एक दिन प्रातःकाल बिछावनसे उठकर माढव्य मनही मन सोचने लगा,—"इस शिकारी राजाके साथ आकर मैंने अपने हाथ-पांव काठमें डाल दिये। रोज शिकारके समय साथ जाना और हिरन, सूअर, शेर-चीते आदि जानवरोंकी हत्या होते देखना, दोपहर तक बिना खाये-पिये पेट जलाना—ओह! मैंने जान बूझकर यह महा-विपत्ति अपने शिर पर ले रखी है। भगवान् ही बचायें। गर्मीके दिन, तिसपर प्यास बुझानेको कहीं पानी तक नहीं मिलता। यदि किसी कुएंमें पानी भी मिलता है, तो ऐसा कि जिसमें पत्ते गिर-गिर कर सड़ गये हैं और ऐसी दुर्गन्ध आती है, कि पीते हुए उल्टी होने लगती है। पर किया क्या जाये? या तो प्यासके मारे मर जाओ,

नहीं तो वही सड़ा-पचा पानी पीकर जीते हुए नरकका तमाशा देखो ! खानेको भी क्या मिलता है ? वही शिकारका मांस ! सो भला मैं ब्राह्मणकी सन्तान होकर कैसे खाऊं ? जो कुछ पल्ले बांध लाया हूं, वही खाता हूं। सूखी दाल रोटीके सिवा साग-भाजी भी मिलनी दुर्लभ है। गोली मारो ऐसी नौकरीको ! दिन भर घोड़ेकी सवारी करते करते बदन अकड़ कर लकड़ी हो जाता है। रातको अच्छी तरह नींद भी नहीं आती। भोरको थोड़ी झपकीसी आती है, परन्तु, उसी समय अभागे शिकारी शोर मचाने लग जाते हैं। बस, लेना-देना बराबर हो जाता है। आयी हुई नींद भी उचट जाती है। यह विपद् जल्दी टलती हुई भी नहीं मालूम पड़ती। उस दिन हम लोगों को छोड़, अकेले ही एक मृगका पीछा करते हुए राजा, तपोवनमें न जाने कौनसी तापस-कन्याको देख आये, तबसे तो वे राजधानी लौट चलनेकी बात ही नहीं करते। यही सोचते सोचते मैं कल रात भर नहीं सोया।" इसी समय माढव्यने देखा, कि राजा शिकारी का वेश बनाये, शिकारके लिये जानेको साथियोंके साथ इधर ही चले आ रहे हैं। यह देख उसने सोचा, कि कुछ ऐसा बहाना कर पड़ जाऊं, कि साथ जानेसे जान बच जाय। ऐसा सोच विचार कर वह इस तरह सुस्त होकर पड़ रहा, मानो उसके शरीरमें कहीं बड़ी भारी चोट आ गयी हो और हाथ-पांव काम न करते हों। राजा जब पास आये, माढव्यने पड़े ही पड़े कहा,—"महाराज, मेरा सारा शरीर अवश हो रहा है, उठने बैठनेसे भी लाचार हूं, इसीलिये उठ तो नहीं सकता पर मुंहसे ही आशीर्वाद देता हूं कि आप दीर्घ-जीवी हों आपके सब मनोरथ सफल हों !" यह कहते कहते वह झूठ मूठ आंह-ऊंह करने लगा। माढव्यकी यह दशा देख, राजाने कहा,—"प्यारे मित्र, तुम्हारा शरीर एकाएक ऐसा क्यों हो गया ?"

माढव्य—"क्यों हो गया, पूछते हैं ? यह तो वही मसल हुई, कि जान भी मारना और कुशल भी पूछना ! आपने ही तो हड्डी हड्डी तोड़ डाली और अब रोता हूं, तो पूछते हैं कि क्यों रोते हो ?" राजा बोले,—"भाई ! तुम्हारी बात मेरी समझमें नहीं आयी। खुल कर साफ-साफ सब बातें कहो।" माढव्य बोला,—"नदी तीरपर जो बेंत पैदा होती है, वह क्यों टेढ़ी होती है ? वह आपसे आप टेढ़ी हो जाती है, वा नदीका वेग उसके बांकपनका कारण होता है ? बोलिये !" राजाने कहा,—"नदीका वेग ही उसका कारण है।"

माढव्य,—"उसी तरह आप भी मेरी इस अङ्ग पीड़ाके कारण हैं !" राजा बोले,—"सो कैसे ?"

माढव्य,—"देखिये आप स्वयं राज-कार्य छोड़-छाड़ कर जङ्गल-जङ्गल वनचरोंकी तरह घूम रहे हैं और मुझ ब्राह्मण-बालकको भी अपने साथ-साथ घसीटते फिरते हैं ! मेरी तो हड्डी-पसली चूर-चूर हो गयी—शरीर वशमें नहीं रहा। इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, कि कमसे कम आज भर तो मुझे विश्राम कर लेने दीजिये।"

माढव्यकी यह प्रार्थना सुन, राजा मन ही मन सोचने लगे,—"सचमुच मैंने भी जबसे शकुन्तलाको देखा है, तबसे शिकार खेलने में मेरा मन ही नहीं लगता। धनुप पर वाण चढ़ाता तो हूं, पर किसी मृगपर छोड़ा नहीं जाता ! मुग्ध-नयनोंसे हरिणोंकी ओर देखने लगता और उनके नेत्रोंसे शकुन्तलाके चञ्चल-नयनोंका मिलान करने लग जाता हूं।"

राजाको इस तरह सोचमें पड़े देख, उनके मुंहकी ओर देखता हुआ माढव्य बोला,—"यह लो, ये तो अपनी ही चिन्तामें पड़ गये, मेरा कहना सुनना सब जङ्गलका रोना हो गया !"

राजाने तनिक मुस्कुराकर कहा,—"नहीं; मित्र। मैं और कुछ

नहीं सोचता, केवल तुम्हारी ही बात सोच रहा हूं। तुम मेरे सखा हो, भला तुम्हारी बात मैं कैसे टाल सकता हूं ? लो आज मैं भी शिकार खेलने नहीं जाऊंगा।"

यह बात सुन, परम आनन्दित हो, माढव्य 'महाराजकी लम्बी आयु हो !' कहता हुआ उठकर जानेकी तैयारी करने लगा। यह देख, राजाने कहा,—"मित्र, कहीं जाना नहीं, मुझे तुमसे कई बातें करनी हैं।"

"क्या ? क्या ? कहिये, कहिये।" कहता हुआ माढव्य राजाके सामने डटकर खड़ा हो गया। राजाने कहा,—"तुम्हें एक बड़े ही कठिन काममें मेरी सहायता करनी होगी।" माढव्य बोला,—"समझ गया ! कहनेकी कोई आवश्यकता नहीं। आप लड्डू, पेड़े, बर्फी और जलेबियोंकी फौजको हरानेमें मेरी सहायता लेना चाहते हैं न ? इसमें तो मैं प्रवीण हूं। इस काममें आप मुझे सदा-सर्वदा सहायता करनेको तैयार समझियेगा।"

"नहीं, मित्र ! यह बात नही है। मैं अपनी बातें पीछे बतलाऊंगा।" यह कह, राजाने द्वारपालको आज्ञा दी, कि सेनापतिको बुला लाओ। आज्ञा पाकर सेनापति शीघ्र ही आ पहुंचे और 'महाराजकी जय हो !' कहते हुए हाथ जोड़कर सामने खड़े हो गये। तदनन्तर धीरे-धीरे कहने लगे,—"महाराज, आपकी आज्ञानुसार हम लोगोंने शिकारके लिये जानेकी सब तैयारियां कर रखी हैं। अब देर करनेका कुछ काम नहीं है। शिकार खेलने चलिये !" राजाने कहा,—"आज तो माढव्यने शिकारकी ओरसे मेरा मन ही फेर दिया। मेरी तो अब मृगयाकी इच्छा ही जाती रही।"

सेना०,—"महाराज, आप भी किस पगलेकी बातोंमें आ गये ? क्या मृगया कोई बुरी वस्तु है ? इससे क्षत्रियोंको कितना लाभ

होता है, आप ही विचार कीजिये। इससे शरीरकी बेहद मुटाई और सुस्ती दूर होकर, काममें फुर्ती और चालाकी आती है। भय और क्रोधके समय पशुओंके मनकी गति कैसी होती है, यह मालूम होता है और कठिनसे कठिन निशाना बांधनेका अभ्यास होता है। शिकार तो शस्त्रधारियोंके लिये बड़ी ही अच्छी चीज है इसलिये इसे बुरा मानना ठीक नहीं। ऐसा लाभ दायक आमोद और कौनसा है? क्रीड़ा-कौतुक भी हो और शरीर तथा मनका उपकार भी हो, ऐसा काम सिवा इसके दूसरा नहीं है!"

सेनापतिकी ये बातें सुन, माढव्य ऊपरी क्रोध दिखाता हुआ कहने लगा,—"जा, दुष्ट कहींका! चुप रह। अब तेरे लाख कहनेसे भी राजाका मन न डोलेगा। अब वे ठीक बात समझ गये हैं। मैं अपने ज्ञानकी आंखोंसे देख रहा हूं, तू शिकारके लिये वन-वन भटकता हुआ किसी दिन भालूसे अपनी नाक कटायेगा।"

सेनापति कुछ कहना ही चाहते थे, कि बीचमें ही राजा बोल उठे,—"देखो, सेनापति, हम लोग तपस्वियोंके आश्रमके निकट हैं, अतएव हमें यहां पशु-हिंसा करनी उचित नहीं है। इसलिये मैं अब तुम्हारी बात नहीं मान सकता। आज भैंसोंको आनन्दसे तालाबमें नहाते हुए जल-क्रीड़ा करने दो तथा हरिणोंके झुण्ड, वृक्षोंकी छायामें बैठे हुए जुगाली करें, जङ्गली सूअर निडर होकर गड्ढोंके किनारे घास नोच-नोच कर खायें, और हमारे तीर-धनुष भी विश्राम करें— यही मेरी इच्छा है! हम लोगोंके साथ और जितने लोग आये हैं, उन्हें भी आज शिकार खेलनेकी मनाही कर दो और जो शिकार खेलनेके लिये तम्बूसे बाहर चले गये हों, उन्हें भी लौट आनेकी आज्ञा दे दो। सेनाके प्रत्येक व्यक्तिसे कह दो, कि तपोवनमें किसी प्रकारका अत्याचार न होने पाये।"—"जो आज्ञा महाराजकी।" कह कर

सेनापति वहांसे चले गये और अपने शिविरमें आ, उन्होंने राजाकी आज्ञा सबको सुना दी ।

\+ \+ \+ \+

सेनापतिके चले जानेके बाद अकेले राजा और माढव्य ही रह गये । राजाने वहांसे उठ कर पासके लता-कुञ्जमें प्रवेश किया और एक स्वच्छ तथा शीतल शिला पर बैठ, माढव्यसे बातें करने लगे ।

राजाने कहा,—"मित्र, तुमने आंखोंका फल नहीं पाया । कोई दर्शनीय वस्तु नहीं देखी ।"

मा०—"यह क्यों, महाराज, आप तो मेरे सामने खड़े ही हैं ? आपको देखा मानो सब कुछ देख लिया। आपसे बढ़कर दर्शनीय और क्या होगा ?"

रा०,—"तुम समझे नहीं । मैं इस आश्रमकी शोभा और बन की लक्ष्मी, कण्व-कन्या शकुन्तलाकी बातें कह रहा हूं ।"

मा०,—(मुस्कुराकर) "महाराज ! यह कैसी बात है ? क्या आप एक तपस्वीकी कन्याकी अभिलाषा करते हैं ! आप क्षत्रिय राजा ठहरे, आपका ऐसा विचार ठीक नहीं ।"

रा०,—"मित्र, पुरु-वंशके लोग इतने नीच और दुराचारी नहीं हो गये हैं कि जिस बातकी मनाही हो, उस बातकी इच्छा करें । तुम्हें मालूम नहीं है, पर मैंने सुना है कि शकुन्तला कण्वकी कन्या नहीं, विश्वामित्रकी कन्या है । उसकी माता स्वर्गकी प्रसिद्ध अप्सरा मेनका है । अतएव शकुन्तला तपस्विनी-कन्या नहीं, आश्रममें उसका लालन-पालन-मात्र हुआ है । बस, उसका यहांके लोगोंसे इतना ही सम्बन्ध समझो ।"

मा०,—"किसीने सच कहा है, कि भर पेट मेवा-मिठाई खा कर भी लोग इमलीकी चटनी चाटते हैं । यही हाल आपका है। आप

का रनवास नाना देशोंकी सुन्दरियोंसे सुशोभित होने पर भी आप इस पेड़ोंकी छाल पहननेवाली जङ्गली कन्याकी अभिलाषा कर रहे हैं ? कैसी विचित्र बात है !"

रा० —"मित्र ! तुमने उसे देखा नहीं है। इसीलिये ऐसी बात कह रहे हो।"

मा०,—"जिसने आपकी आंखोंमें चकाचौंध पैदा कर दी है, उसके अद्भुत सुन्दरी होनेमें सन्देह ही क्या है ? महाराज, वह तो अवश्य ही परम सुन्दरी होगी !"

रा०,—"मित्र ! मैं सच कहता हूं कि, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग तथा सुघराईको देख यही मालूम होता है, मानो विधाताने पहले चित्रपट पर एक काल्पनिक चित्र अङ्कित कर, उसीके नमूने पर उसके शरीर की रचना की है। अथवा मनही-मन अच्छे-अच्छे उपादानोंका संग्रह कर, उन्होंने मनसे ही उसकी वह सुन्दर शोभनीय देह बनायी है। विधाताके हाथोंकी ऐसी कारीगरी तो आज तक कभी देखी नहीं गयी। यदि वह हाथोंसे गढ़ी हुई होती, तो उसमें इतनी कोमलता इतना रूप, इतना लावण्य कभी न दिखलायी देता। भाई, शकुन्तला इस सृष्टिकी एक अद्भुत रत्न है।"

मा०,—"बस महाराज, अब समझा, कि शकुन्तलाके आगे संसार भरकी सुन्दरियां पानी भरेंगी !"

रा०,—"मित्र, उसका रूप क्या है, मानो खिला हुआ फूल है, जिसे कभी किसीने नहीं सूंघा, नवीन पल्लव है—जिसको ऊंगलियोंके नखोंने कभी स्पर्श नहीं किया, खरा रत्न है—जो कभी काटा-छांटा या खराद पर नहीं चढ़ाया गया, नवीन मधु है—जिसका संसारमें किसीने स्वाद नहीं जाना, जन्मान्तरसे इकट्ठी हुई पुण्यराशि, जो कभी क्षीण होनेवाली नहीं। भैया, न जाने, इस अलौकिक रूपका उपभोग करना विधाताने किसके भाग्यमें लिखा है।"

राजाके मुंहसे शकुन्तलाके रूपकी ऐसी बड़ाई सुन और मनही मन उनके हार्दिक अनुरागका अनुमान कर माढव्य भौंचकसा होकर बोला,—"जब ऐसी बात है, तब शुभस्य शीघ्रम्—झटपट उससे विवाह ही कर लीजिये। कहीं ऐसा न हो कि आप तो इधर सोच विचार में ही रहें और उधर कोई असभ्य तपस्वी, इस रूप-राशि गुण शील-कन्या-रत्नको पाकर निहाल हो जाये।"

राजाने कहा,—"कैसे चटपट विवाह कर लूं ? एक तो शकुन्तला पराधीन है, दूसरे उसके पालक पिता कुल-पति—कण्व, इस समय यहां पर नहीं हैं।"

मा०,—"अच्छा तो क्या आपने कुछ यह भी देखा सुना है कि उस लड़कीका आप पर भी अनुराग है या नहीं ?"

रा०,—"तपस्विनी-कन्यायें स्वभावसे ही भोली भाली होती हैं, तो इतना तो मैं उसका आकार-प्रकार देख कर ही समझ गया हूं, कि उसके मनमें भी मेरे प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है। जब तक वह मेरे सामने बैठी रही, तब तक कुछ न बोली, पर मैं जब उसकी सखियोंके साथ बातें करने लगता था, तब वह मेरी बातें बड़े ध्यानसे कान लगाकर सुनती थी, आंखें चार होते ही सिर नीचा कर लेती थीं, पर जब मैं दूसरी ओर देखने लगता था, तब एक टक मेरी ही ओर निहारा करती थी। जब मैं वहांसे उठकर चलने लगा तो वे सब भी जानेको तैयार हुईं। कुछ ही पग आगे जाकर—शकुन्तला, पैरमें कुशका अंकुर गड़ जानेका बहाना कर खड़ी हो गई, फिर शरीरका वल्कल-वस्त्र कुरुवक-वृक्षकी शाखामें फंस गया है—ऐसा कह, वल्कल वस्त्रको छुड़ानेके बहाने मुंह फेर कर लालायित-लोचनोंसे मेरी ओर देखने लगी। मित्र, यह सब अनुरागके लक्षण नहीं तो और क्या हैं ?"

मा०,—"मित्र, इससे मालूम होता है कि आपका मनोरथ सिद्ध हुए बिना न रहेगा। यह तपोवन तो आपके लिये सौ उपवनोंसे भी बढ़ गया।"

रा०,—"भाई, अब ऐसा कोई उपाय बतलाओ, जिसमें मेरा यहां कुछ दिनों तक रहना हो सके, क्योंकि किसी-किसी तपस्वीने मुझे पहचान लिया है। बिना उचित कारण दिखलाये ठहरना ठीक नहीं है।"

मा०,—"आपको बहानोंकी क्या कमी है? आप राजा हैं, कहिये कि हम मालगुजारी वसूल करने आये हैं, जब तक सब मालगुजारी न दे देंगे, तब तक हम यहांसे नहीं जायेंगे।"

रा०,—"अरे भाई! ये तपस्वी हैं, ये साधारण प्रजाकी तरह राज-कर नहीं देते। ये जो कुछ देते हैं, वह रत्नोंके ढेरसे भी अधिक मूल्यवान है। सामान्य प्रजा जो धन राजाको देती है, वह नाशवान् वस्तु है परन्तु तपस्वी लोग अपनी तपस्याका जो छठा हिस्सा राजा को कर-स्वरूप देते हैं, वह लोक-परलोक दोनोंमें बना रहता है।"

राजा और माढव्यमें इसी प्रकारसे बातें हो ही रही थीं, कि इसी समय दो ऋषि-कुमारोंने राजाके सम्मुख उपस्थित हो, उन्हें आशीर्वाद दिया। राजाने झटपट मस्तक झुकाया और कहा,—"कहिये, क्या आज्ञा है? मैं आप लोगोंका दास हूं, मुझे अपनी आज्ञा पालन करनेको सदा प्रस्तुत जानियेगा।"

यह सुन, ऋषि-कुमारोंने कहा,—"महाराज, इन दिनों महर्षि कण्व आश्रममें नहीं हैं, इस समय राक्षसोंका यहां बड़ा भारी उपद्रव हो रहा है। हमारे भाग्यसे जब आप यहां आ पहुंचे हैं, तब जब तक महर्षि लौट कर नहीं आते, तब तक यदि आप यहीं रहें, तो हम लोगोंका बड़ा उपकार हो। आपका आगमन सुन कर सारे तपो-

वनके ऋषि-मुनि प्रसन्न हो रहे हैं और आशा करते हैं, कि आप राक्षसोंका उपद्रव शान्त करनेके लिये अवश्य ही यहां कुछ दिन ठहरनेकी कृपा करेंगे, क्योंकि आप यदि यहांसे चले जायेंगे, तो हम लोग एकदम असहाय हो जायेंगे और निशाचर गण हमारी तपस्या में बड़ा विघ्न डालेंगे।"

यह सुन राजा बड़े ही प्रसन्न हुए। वे यहां कुछ दिनों तक ठहरनेका बहाना तलाश कर ही रहे थे, कि भाग्यने उनकी सुन ली और अनायास यह बहाना मिल गया। मन ही मन आनन्दित हो, राजाने कहा,—"तपस्वियोंकी आज्ञा मेरे शिर-आंखों पर है। मैं अवश्य ही यहां रह कर आप लोगोंकी सेवा करूंगा।"

इस प्रकार अनुकूल उत्तर पा, ऋषि-कुमार आनन्दित चित्तसे तपोवनको लौट चले, जाते-जाते बोले—"महाराज, ऐसी उदारवाणी आपके योग्य ही है। क्यों न हो ? आपने उसी पवित्र पुरु-वंशमें जन्म ग्रहण किया है, जिस वंशके लोग विपद्में पड़े हुए मनुष्योंको अभय-दान देना अपना धर्म समझते थे। परमात्मा आपको दीर्घ-जीवी बनायें आपके मनोर्थ सफल करें।"

यह कह, वे ऋषि-कुमार चले गये। उनके चले जाने पर राजाने अपने सारथिको बुला, रथ तैयार कर ले आनेकी आज्ञा दी। इस पर माढव्यने राजाकी चुटकी लेते हुए कहा,—"भाई! क्या कहते हैं! 'जो रोगीको भाये वही वैद्य बतलाये'—वाली कहावत हो रही है। आपका तो मनचीता ही हुआ। कहां आप यहां ठहरनेका कोई उपाय तलाश कर रहे थे, कहां, स्वयं ही आसमानसे उपाय बरस पड़ा! इसीको कहते हैं, 'विधि-विधान!' महाराज, अब तो आपकी पांचों घीमें हैं!"

यह सुन, राजाने मुस्कराते हुए कहा,—"मित्र, यदि तुम्हारी

इच्छा शकुन्तलाको देखनेकी हो, तो इसी समय मेरे साथ चले चलो। देखोगे, तो समझोगे, कि मैंने अभी-अभी तुमसे उसके बारेमें जो कहा है, वह कहां तक सच है।"

माढव्य,—"मेरी सचमुच इच्छा थी, कि उस स्वर्गीय-सुन्दरीके दर्शनोंसे अपने नयनोंको तृप्त करूं, पर, महाराज, आश्रममें राक्षसोंका बड़ा उपद्रव है, यह बात सुन कर तो मेरी जान ही सूख गयी है। कहीं एक भी राक्षस दिखाई दिया, तो बस मेरे जीवनकी समाप्ति ही समझिये। मैं तो शकुन्तलाको देखनेसे रहा!"

राजा,—(हंसते हुए) "मेरे पास रहते हुए तुम्हें काहेका डर है? चलो, निशाचरोंसे डरनेका कुछ काम नहीं है।"

माढव्य,—"जब आपका हाथ मेरी पीठ पर है, तब मुझे भय काहेका है? चलिये, मैं भी उसे देख कर अपना जन्म सफल कर लूं।"

इसी समय सारथि रथ तैयार कर ले आया और बोला—"महाराज, राजधानीसे एक दूत राजमाताका भेजा हुआ अभी आया है। वह कहता है, कि आजसे चौथे दिन उनका कोई व्रत होगा, उस दिन आपको राजधानीमें अवश्य पहुंच जाना चाहिये, तो क्या इस समय राजधानी ही चलनेका विचार है?"

यह सुन राजा बड़ी चिन्तामें पड़े। "इधर मैं तपस्वियोंसे प्रतिज्ञा किये बैठा हूं, उधर देवी-स्वरूपिणी जननीकी आज्ञा है, कि शीघ्र राजधानीको लौट आओ। क्या करूं, क्या न करूं?" यही सोचते सोचते राजा व्याकुल हो, माढव्यसे पूछने लगे,—"मित्र, ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये?"

माढव्य बड़ा हंसोड़ था। वह समय असमय देखे बिना ही सदा हंसीकी बातें किया करता था। राजाको ऐसा घबराया हुआ देख

कर भी वह परिहास करनेसे न चूका। वह राजाकी बात सुन कर चट-पट बोल उठा,—"कीजियेगा क्या ? इधर कुंआ है, उधर खाई ! दोनों ही पलड़े बराबर हैं। इसलिये त्रिशंकुकी तरह अधरमें लटके रहनेके सिवा मैं और क्या उपाय बतलाऊं ?"

राजा, सब समय उसकी हंसीकी बातें सुन, मुस्करा देते थे, परन्तु इस समय उन्हें हंसी नहीं आयी। वे कुछ झुंझला कर बोले,—"मित्र, दिल्लगीकी बात नहीं है, मैं सचमुच बड़ी चिन्तामें पड़ गया हूं। क्या करूं, कुछ समझमें नहीं आता।"

यह कह राजा कुछ देर तक सोचते रहे। इसके बाद कोई उपाय अनायास सूझ पड़नेसे मन ही मन परम आनन्दित होते हुए बोले,—"मित्र, मेरी माता तुम्हें अपने पुत्रके समान मानती हैं, अतएव मेरे स्थानमें तुम्हीं राजधानीको लौट जाओ और मेरा अभाव दूर करो। मातासे कहना, कि इस समय मैं उन्हींके उपदेशोंके अनुसार आचरण करनेमें लगा हूं। वे सदा कहा करती हैं, कि देवता ब्राह्मण, और गौके हितका काम संसार भरके काम छोड़ कर करना चाहिये। सो इस समय मैं इन तपस्वी ब्राह्मणोंके काममें निरत हूं। इसीसे उनकी आज्ञाका पालन न कर सका। आशा है, 'तुम्हारे समझाने-बुझानेसे माताको सन्तोष हो जायगा और वे मेरे नहीं जानेसे दुःखित न होंगी।"

माढव्यने राजाकी बात सुन, प्रसन्न होते हुए कहा,—"महाराज, आज मैं सचमुच आपका छोटा भाई हो गया ! मैं अवश्य ही रानीमाताके पास पहुंच कर आपकी बातें उन्हें कह सुनाऊंगा और व्रतके समय आपकी जगह पर उनका पुत्र बन जाऊंगा। परन्तु मैं इतनी आसानीसे चले जानेको तैयार होगया, इससे यह न समझियेगा, कि मैं राक्षसोंके डरसे भागा जा रहा हूं। भागने वाले कोई और होंगे

हां एक बात है, जब मैं आपका छोटा भाई हो गया, तब राजसी ठाठसे ही राजधानीको जाऊंगा। पहले की तरह भिखमंगे ब्राह्मणके बेटेकी भांति कदापि नहीं जा सकता !"

राजा अपने उस सरल-हृदय-प्रेमी मित्रकी इस बातसे बड़े सुखी होकर बोले,—"अवश्य, तुम्हारी यह अभिलाषा अनुचित नहीं है। मैं सभी सैन्य-सामन्तोंको तुम्हारे साथ भेजे देता हूं। यहां अब उनका कोई काम भी तो नहीं है ? बहुत भीड़-भाड़ सङ्ग रहनेसे तपोवनके लोगोंको कष्ट भी हो सकता है। तुम उनके साथ-साथ सानन्द चले आओ।"

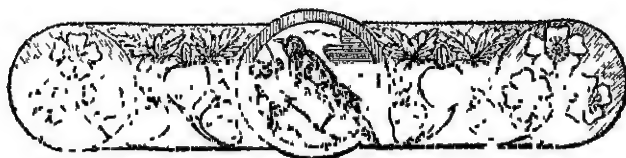
माढव्यकी प्रसन्नताका कोई ठिकाना न रहा। वह मारे हर्षके फूल कर कुप्पा हो गया। बोला—"महाराज, आज मैं एकबारगी दीन ब्राह्मणसे युवराज हो गया ! मुझसे सौभाग्यशाली और कौन होगा ?"

तदनन्तर माढव्यके जानेकी तैयारी होने लगी। सभी सैन्य-सामन्त सज-धज कर तैयार हो गये। माढव्यने भी अपना खूब छैल-छबीला रूप बनाया और अकड़-अकड़ कर सब पर रोब गांठने लगा। जब माढव्य और समस्त सैन्य जानेके लिये एकदम प्रस्तुत हो गये , तब राजाने सोचा कि यह चञ्चल स्वभावका आदमी ठहरा, कहीं शकुन्तलाका हाल मेरी माता और अन्य रानियोंसे कह कर व्यर्थका आन्दोलन न खड़ा कर दे, अतएव इसे ऐसा समझा बुझा कर ठीक कर देना चाहिये, जिसमें इसका मुंह बन्द रहे।"

ऐसा विचार कर उन्होंने माढव्यको अपने पास बुलाया और प्रेमके साथ उसका हाथ पकड़ कर कहा,—"मित्र, ठीक जानना, मैं ऋषियोंके अनुरोधसे यहां ठहर जानेको तैयार हुआ हूं, शकुन्तलाके लिये नहीं। शकुन्तलाके बारेमें मैंने जो कुछ तुमसे कहा था, वह परिहास मात्र था। कहीं उसे सच न समझ लेना।"

माढव्यने कहा,—"मैं उस बातको न तो पहले सच समझता था, न अब समझूंगा। आपने कह दिया, अच्छा किया, नहीं तो मैं आपको बड़ा गपोड़ और झूठा समझता !"

इसके बाद राजाने प्रीति-पूर्वक माढव्य तथा अपने साथ आये हुए अन्यान्य अनुचरोंको विदा किया और उनके चले जाने पर आप आनन्द , आल्हाद और प्रीतिसे प्रफुल्ल हृदयके साथ तपोवनमें चले आये ।



पंचम-परिच्छेद ।

प्रेमियोंकी व्याकुलता ।

समस्त साथियों और सेना तथा माढव्यको विदा कर राजा दुष्यन्त, तपोवनमें ही ठहरे रहे। परन्तु दिन रात उठते बैठते, और सोते-जागते शकुन्तलाकी चिन्ता उन्हें सताने लगी। राजा निर्बल होने लगे। उनका मुख सूख गया। किसी काममें उत्साह नहीं होता। खाना-पीना और सोना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। दिन रात उनको यही चिन्ता लगी रहने लगी—कि अब शकुन्तलासे कब और कैसे कहां भेंट होगी। तपस्वियोंके भयसे वे अपना सङ्कल्प भी पूरा नहीं कर सकते थे।

इसी प्रकारसे एक दिन दोपहरके समय राजा दुष्यन्त, एक निर्जन स्थानमें बैठे मन ही मन सोच रहे थे कि—"अब तो शकुन्तलाको बिना देखे चैन नहीं पड़ता। अभी तो खैर मैं यहां ही हूं, परन्तु जब तपस्वियोंका काम हो जायगा—और मुझे राजधानीको चला जाना होगा, तब मेरी क्या दशा होगी? मैं कैसे जीवन व्यतीत कर सकूंगा।" इसी प्रकारसे सोचते सोचते राजा उठकर खड़े हो गये और बोले कि,—"अच्छा देखा जायगा, जो कुछ होगा एक बार तो चलूं और चल कर शकुन्तलाको देखूं। सम्भवतः इस समय वह मालिनी-नदीके तट पर लता-कुञ्जमें बैठकर गरमी दूर कर रही होगी। इस समय वहीं एक बार उससे भेंट हो सकेगी।" इस प्रकार-

से विचार कर वे ग्रीष्मऋतुके मध्यान्ह कालमें ही मालिनी-नदी तीर वाले लता-कुञ्जकी ओर चल पड़े।

\+ + + +

इधर शकुन्तला भी जबसे उसने दुष्यन्तके दर्शन किये थे, तबसे कुछ और की और ही हो रही थी। उसने मन ही मन अपनेको उन देवता स्वरूप राजाके चरणोंमें समर्पण कर दिया था। इस लिये वह भी दिन पर दिन पुनर्मिलनकी चिन्तासे व्याकुलसी होती जाती थी। देखनेवालोंको ऐसा प्रतीत होता था, जैसे शकुन्तलाको भारी मर्मव्यथा हो रही हो। उस दिन वह और भी अधिक उदास और खिन्न हो रही थी। उसका मन चञ्चल हो रहा था। इसीसे जरा जी बहलानेके लिये उसकी प्रिय सखियां प्रियम्बदा और अनसूया उसे मालिनी नदीके तटस्थ निकुञ्ज-वनमें ले गईं और एक शुभ्र-स्फटिक-शीतल-शिला पर नये पल्लवों और पानीसे भीगे हुए कमलके पत्तोंकी कोमल शय्या बना, उसी पर उसे सुला कर उसकी सेवा-शुश्रूषा करती हुई नाना प्रकारसे उसका दिल बहलाने लगीं।

इधर राजा भी साहस कर उधर आ रहे थे। जहां तहां सखियों के चरण-चिन्ह देख कर वे समझ गये कि हो न हो शकुन्तला और उसकी सखियां अवश्य ही इधर आई हैं। कुछ ही दूर आगे बढ़कर उन्होंने देखा कि लता-गुल्मोंकी ओटमें एक स्फटिक-शिला पर शकुन्तला व्याकुलसी पड़ी हुई है, और पास ही बैठी उसकी प्रिय सखियां उसकी सेवा-शुश्रूषा कर रही हैं। यह अद्भुत दृश्य देखकर राजा वहीं पर ठहर गये और एक वृक्षकी ओटमें खड़े होकर सौन्दर्य्यमयी शकुन्तलाकी रूप-राशिके दर्शन कर अपने नेत्रोंको सुशीतल करने लगे।

थोड़ी देरमें राजाने देखा कि शकुन्तलाको अधिक व्याकुल देख

उसकी सखियां एक कमल-पत्रको पानीमें भिगो कर उसे हवा कर रही हैं। हवा करती हुई सखियोंने पूछा कि—"क्यों शकुन्तला, इस ठण्डी हवासे चित्त कुछ स्थिर हुआ?" सखियोंकी बात सुनकर शकुन्तलाने जरा मुंह ऊपर उठाकर कहा,—"ऐं! तुम क्या हवा कर रही हो?"

शकुन्तलाकी अद्भुत बात सुनकर दोनों सखियां एक दूसरीका मुंह देखने लगीं। सचमुच शकुन्तला दुष्यन्तकी चिन्तामें कुछ ऐसी लीन हो रही थी कि बाहरसे जैसे संज्ञाहीन हो रही हो। इसीलिये उसने ऐसी बात पूछी, जिससे उसकी सखियां चकित हो गईं और उधर एक वृक्षकी ओटमें खड़े राजा दुष्यन्त भी, शकुन्तलाकी यह दशा देख, मन ही मन कहने लगे, कि—"गर्मीसे तो ऐसी दशा होनी सम्भव नहीं है। पर शायद रमणी—शरीर गर्मीके इस भीषण उत्ताप-को न सहन कर सकता हो! हम मनुष्य हैं, गर्मीमें दौड़-धूप करते हैं, तो भी इतने व्याकुल नहीं होते परन्तु रमणी-शरीरही यदि कोमल होनेके कारण इतना व्याकुल हो जाता है,—तो शकुन्तलाके पास बैठी ये दोनों सखियां भी तो वैसी ही कोमल और रमणियां ही हैं। इससे तो यही मालूम होता है कि जिस वियोग-व्याकुलतासे अधीर होकर मैं सूखा जा रहा हूं—उसीके कारण शकुन्तला भी व्याकुल और मर्मपीड़िता हो रही है।"

उधर शकुन्तलाके इस आश्चर्य-व्यापारको देख प्रियम्वदाने अन-सूयासे कहा,—"सखी, जिस दिनसे शकुन्तलाने राजा दुष्यन्तके दर्शन किये हैं, उसी दिनसे यह सूख कर कांटा हो रही है। कहीं इस रमणी-हृदयमें अनुरागका अंकुर तो नहीं अंकुरित हो आया है।" उत्तरमें अनसूयाने कहा,—"हां, सखी, मैं भी कुछ कुछ ऐसा ही समझती हूं। भला जरा शकुन्तलासे ही पूछ देखूं।" कह कर वह शकुन्तला-

से पूछने लगी,—"प्रिय शकुन्तला, जरा तू ही बता दिन पर दिन तेरी तबीयत इतनी खराब क्यों होती जाती है ?" शकुन्तलाने कहा,—"सखी, मुझे तो स्वयं कुछ मालूम नहीं होता कि मेरी ऐसा दशा क्यों हो रही है !"

शकुन्तलाकी बात सुनकर अनसूया शकुन्तलाके शिर पर हाथ फेर कर बोली,—"क्यों सखी, जरा बता तो सही आखिर तुझे बीमारी क्या है ? उपन्यास और नाटकोंमें हम पढ़ा करती हैं कि बिरहिणियोंकी कैसी दशा हो जाती है, ठीक उससे मिलती जुलती तेरी दशा हो रही है। ठीक ठीक बता तो सही कि कहीं तू भी तो किसीकी विरहाग्निमें इस प्रकारसे बेहाल नहीं हो रही है ? जब तक रोगका निर्णय न हो जाय, औपधोपचारसे कोई प्रकृत लाभ नहीं हो सकता।" अनसूयाकी बात सुनकर शकुन्तला बोली,—"मेरी तबीयत ज्यादा खराब है, चित्त चञ्चल हो रहा है—इसलिये मैं कुछ भी ठीक करके नहीं कह सकती !"

शकुन्तलाकी बात सुनकर प्रियम्बदा बोली,—"नहीं सखी, इस प्रकारसे टालनेसे काम नहीं चलेगा। इस व्याकुलताका असली कारण बताना ही होगा। मनकी इस बेदनासे देख तो तेरा शरीर सूख कर कांटा हो गया है। चेहरेका रङ्ग फीका पड़ गया है। मुखकी कान्ति नष्ट हो रही है। इधर प्रियम्बदा अपनी प्यारी सखीसे इस व्याकुलताका कारण पूछ रही थी—उधर वृक्षकी ओटमें छिपे हुए राजा दुष्यन्त—मन ही मनमें कह रहे थे,—"हां, प्रियम्वदा ठीक ही तो कह रही है कि शकुन्तला सूख कर कांटा हो रही है। परन्तु यह कैसी आश्चर्यकी बात है कि इस अवस्थामें भी शकुन्तलाका रमणीय-रूप मेरे मन और नेत्रोंको मुग्ध कर रहा है। कवियोंने सत्य ही कहा है कि भगवान्‌ने जिसको रूप दिया है, उसको भूपण-वसनकी कुछ

भी आवश्यकता नहीं। दुःख और शोक भी उसकी कमनीय कान्तिको मलिन नहीं कर सकते। उसकी शोभा निराली और आंखोंको तृप्त करनेवाली होती है।"

इधर सखियोंके आग्रह और मनके बोझसे शकुन्तला व्याकुल हो रही थी। उसने सोचा कि मनके भावको अब और अधिक दिनतक छिपाकर रखनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है। वह कुछ अधीर और व्याकुलसी होकर बोली,—"प्यारी सखी, हृदय व्याकुल हो रहा है। अब और अधिक मनके वेगको रोककर मैं अपनी व्याकुलताके कारणको नहीं छिपा सकती। फिर तुम लोगोंको ही अपने मनकी व्यथा न सुनाऊंगी, तो और किसको सुनाकर अपने मनको हल्का करूंगी।"

शकुन्तलाकी बात सुनकर दोनों सखियां एक स्वर होकर बोलीं, "हां सखी, तेरी इस भयङ्कर व्याकुलताको देखकर जी घबड़ाता है। मालूम नहीं तेरे हृदयमें तो कितनी अधिक अन्तर्वेदना हो रही होगी। आत्मीय-जनोंके सामने अपनी मर्म-पीड़ाका उल्लेख कर देनेसे मनका बोझ हल्का हो जाता है। शारीरिक कष्ट होनेसे उसका कुछ उपाय हो सकता है। इसी लिये हम तुझसे बार बार अपनी मर्म-व्यथा बतानेका आग्रह और अनुरोध कर रही हैं।"

इधर ओटमें खड़े राजा दुष्यन्त, तीनों सखियोंका वार्तालाप सुन कर मन ही मनमें उद्विग्न होकर सोच रहे थे कि देखा चाहिये—कि शकुन्तला अपने मुंहसे ही अपनी इस व्याकुलताका क्या कारण बताती है। पहले दिनकी देखा-देखीमें तो उसका सहज सरल अनुराग और चलते समय ललचाये हुए लोचनोंसे बार बार मेरी ओर देखना कुछ और ही बता रहा था, परन्तु आज देखा चाहिये क्या गुल खिलता है।

इधर शकुन्तलाने अपनी सखियोंसे अपनी मर्म-व्यथा कहनी आरम्भ की। शकुन्तला पहले तो बहुत लज्जितसी हुई, फिर सखियों के उत्साह-प्रदानसे आंखोंमें पानी भर कर कहने लगी,—"सखियो, क्या कहूं—कुछ कहा भी नहीं जाता, परन्तु क्या करूं, आज तो सब बात खोलकर कहनी ही होगी। मैंने जिस दिनसे उन राजर्षिको देखा है, मेरा अनुराग उनपर हो गया है। उसीकी व्यथासे मेरा यह हाल हो रहा है!" इतनी बात कहकर शकुन्तलाका गला रुंध गया और नेत्रोंसे छल-छल करके अश्रुपात होने लगा।

अनसूया और प्रियम्वदाने शकुन्तलाके आंसू पोंछते हुए कहा,—"सखी, इसमें लज्जा और सङ्कोचकी क्या बात है। जैसे चातक, स्वाति-बिन्दुके सिवा और किसी जलको ग्रहण नहीं करता, चकोरी चन्द्रमाके अतिरिक्त किसीको नहीं चाहती, कमलिनी, भुवन-भास्कर को ही देखकर विकसित होती है, नदियां, सागरमें ही जाकर लीन हो जाती हैं, वैसे ही तेरे हृदयमें भी राजा दुष्यन्तके प्रेमका ही अंकुर अंकुरित हुआ है। उनकासा रूप-गुण-शील और वैभव किसके पास है?"

शकुन्तला और उसकी सखियोंकी बात सुन कर ओटमें छिपे राजा दुष्यन्त, पुलकित हो उठे। वे जो चाहते थे, मिल गया! कान तृप्त हो गये। हृदय हर्षित हो गया। मानसिक ज्वाला शान्त हो गयी। राजा आनन्द और हर्षातिरेकसे पागलसे हो गये।

इधर अपनी सखियोंसे प्रेमपूर्ण सहानुभूतिकी बात सुन कर शकुन्तला बोली,—"सखी, अब तो हृदय किसी तरहसे भी नहीं मानता, जी चाहता है कि किसी प्रकारसे प्राण त्यागकर इस वियोगी-यन्त्रणासे छुटकारा पाऊं।"

शकुन्तलाकी बात सुनकर अनसूया, प्रियम्वदाको सम्बोधन कर

बोली,—"प्रिय सखी, इसका तो कुछ उपाय शीघ्र होना चाहिये, नहीं तो बुरा परिणाम होनेकी आशङ्का है।" उत्तरमें प्रियम्वदा कहने लगी,—"सखी, हां उपाय तो शीघ्र करना चाहिये, नहीं तो ठीक नहीं होगा,। सखी, तुमने और भी एक बात देखी है ? हमारी सखी शकुन्तलाकी जो दशा हो रही है, उससे मिलती जुलती उन राजाकी भी उसी दिनसे वही दशा हो रही है, जिस दिनसे हमारी सखीसे उनकी चार आंखें हुई हैं, उनका चेहरा पीला पड़ गया है और मुंह सुख गया है। मैं तो समझती हूं उनके हृदयमें भी शकुन्तलाके अनुरागका अंकुर फूट आया है।"

इधर प्रियम्वदाकी बात सुन वृक्षकी ओटमें खड़े राजा दुष्यन्त, अपने शरीरको आपाद-मस्तक देखने लगे! उन्होंने देखा कि सच-मुच उनका रङ्ग पीला पड़ गया है। मुंह सूख गया है। शरीर कृश-हो गया है। मुखकी कान्ति नष्ट हो गई है। जब राजा अपने दुर्बल देहको देख रहे थे, उसी समय प्रियम्वदाने फिर कहा,—"सखी, अच्छा हो यदि शकुन्तला एक प्रेम-पत्र लिख कर भेजे और अपने प्रेमका भाव उनपर प्रकट करे। मैं उस पत्रको फूलोंमें छिपा कर प्रसादके साथ दे आऊंगी।" अन्तमें अनसूया और शकुन्तलाने प्रियम्वदाके प्रस्तावको स्वीकार कर लिया। परन्तु शकुन्तलाने एक बार यह कह कर आपत्ति की कि कभी पीछेसे इस पत्रके कारण मेरा अनादर न हो। परन्तु प्रियम्वदाने शकुन्तलाके भयको यह कह कर दूर कर दिया कि सखी, तू अपने गुणोंको स्वयं नहीं जानती, इसलिये ऐसी बात कह रही है। शरत्कालकी चटकीली चान्दनीको रोक रखनेकी किसमें सामर्थ्य है ? फिर रत्नोंकी खोज मनुष्य स्वयं करते हैं, रत्न तो स्वयं नहीं जाया करते। प्रियम्वदाकी बात सुन कर शकुन्तला प्रेम-पत्र लिखनेको तैयार हो गयी। परन्तु एक

कठिनता पड़ी, लिखे काहे पर। प्रियम्वदाने एक कमल-पत्र हाथमें देकर इस समस्याको भी हल कर दिया। सुतरां, शकुन्तला एक स्फटिक-शिला पर कमल-पत्रको रखकर प्रेम-पत्र लिखने लगी।— शकुन्तला जिस समय पत्र लिख रही थी, ऐसा ज्ञात हो रहा था कि जैसे वह साक्षात् दुष्यन्तसे मिल कर अपनी मर्म-व्यथा समझा रही हो।



षष्ठ-परिच्छेद ।



प्रेम-पत्र

—:०*०:—

प्रेम पत्र लिखना समाप्त कर शकुन्तला बोली,—"सखियो, प्रेम-पत्र लिखा गया। पर जरा देखो तो सही पत्रके भाव ठीक लिखे गये हैं या नहीं।" यह कह कर उसने पत्र पढ़ना आरम्भ किया। पत्र इस प्रकारसे लिखा गया था,—"हे निर्दय, मैं नहीं जानती कि तुम्हारे मनमें क्या है ? परन्तु मैं मन ही मन तुमको अपना जीवन समर्पण कर चुकी हूं ! मेरा हृदय वियोगसे दारुण दुःख उठा रहा है।" शकुन्तलाने पत्र पढ़ कर अभी समाप्त भी नहीं किया था कि वृक्षकी ओटमें खड़े राजा दुष्यन्त, मनके आवेगको किसी प्रकारसे भी न रोक सकनेके कारण पत्तोंकी खड़-खड़ाहटमें से बाहर निकल आये। राजा दुष्यन्तको एकाएक वहां उपस्थित देख, तीनों सखियां अवाक दृष्टिसे देखने लगीं। इसी समय शकुन्तलाको लक्ष्यकर राजा बोले, "सुन्दरी, तुमको दारुण दुःख ही हुआ है, पर मैं तो वियोगकी विरहाग्निमें भस्म ही हुआ जा रहा हूं !" राजाकी बात सुन कर तीनों सखियां शिष्टाचार प्रदर्शित करनेके लिये खड़ी हो गयीं। परन्तु शकुन्तला लज्जाके मारे ठीकसे खड़ी भी न हो सकी। शकुन्तलाको जरा संकुचितसी देखकर राजा बोले,—"सुन्दरी, मैं तो तेरे दर्शनोंसे ही पर्याप्त स्वागत पा गया, अब और कष्ट करनेकी जरूरत नहीं।" राजाकी बात समाप्त हो जाने पर दोनों सखियोंने कहा,—"महाशय, आइये, आप भी इस शिला-खण्ड पर बैठ जाइये। इसी प्रकारसे



शकुन्तलाका पत्र-लेखन ।

आपका खड़ा रहना अच्छा नहीं प्रतीत होता ।" सखियोंके अनुरोध से राजा बैठ गये । परन्तु शकुन्तलाका सङ्कोच और लज्जा दूर न हुई । वह मन ही मन हृदयको सम्बोधन कर कहने लगी,—"हे हृदय, तुम जिसके लिये इतने कातर हो रहे थे, वह तो सामने उपस्थित हैं !"

एक शिला-खण्ड पर बैठ कर राजाने दोनों सखियोंको सम्बोधन कर कहा,— "मैं देख रहा हूं कि आज तुम्हारी सखीकी तबीयत ठीक नहीं है ?" राजाकी प्रश्न-सूचक बात सुन कर दोनों सखियां हंसती हुई बोलीं,—"हां तबीयत तो खराब है, पर उसकी दवा अब मिल गयी है, आशा है शीघ्र ही ठीक हो जायेगी ।" रहस्यपूर्ण हंसी और व्यङ्ग भरी बातसे शकुन्तलाने अपना मुंह नीचा कर लिया ।

थोड़ी देर बाद अनसूया हंसती हुई बोली,—"महाराज, सुना है कि राजा महाराजाओंके यहां अनेक रानी-महारानियां हुआ करती हैं, परन्तु राजा लोग सब पर प्रेम नहीं रखते । पर हमारी सखी पर तो ऐसी दया रखियेगा कि कहीं उसे भी वही दुःख न उठाना पड़े ।"

अनसूयाकी बात सुनकर राजा बोले,—"इसमें सन्देह नहीं कि राजाओंके अनेक रानी-महारानियां होती हैं, परन्तु यह मैं प्रतिज्ञाबद्ध होकर कह सकता हूं कि तुम्हारी सखीको यदि मुझे अपनी रानी बनानेका सौभाग्य प्राप्त हो सका, तो वह मेरे जीवनकी सर्वस्व होगी ।"

राजाकी दृढताके आवेशमें कही हुई बातोंसे दोनों सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ । उन्होंने हर्ष प्रकट करते हुए महाराजकी प्रशंसा की ।

इस समय शकुन्तलाको क्या सूझी । वह अभीतक तो लज्जा और सङ्कोचसे भीगी बिल्लीकी तरह बैठी थी, परन्तु सखियों और

राजाके सम्वादसे प्रसन्न हो, हर्षातिरेकसे एकाएक बोल उठी,—"सखी, महाराजको लक्ष्यकर न जाने क्या क्या बातें मुंहसे निकल गयी हैं; अतः इनसे क्षमा मांग लेना चाहिये।"—सखियोंने हंस कर कहा,—"वाह! अपराध कोई करे और क्षमा कोई मांगे। जिसने बातें कहीं हों क्षमा मांगे। हमें क्या पड़ी है कि किसीकी बला अपने शिर पर लें!"

शकुन्तला समझ गई कि सखियां उसे ही राजासे बोलनेके लिये विवश कर रही हैं। लाचार हो और सङ्कोचको परित्याग कर शकुन्तला बोली,—"महाराज, भूल और भ्रमसे यदि कोई बात मेरे मुंहसे निकल गई हो, तो आप क्षमा करेंगे। परोक्षमें बड़े आदमियोंके सम्बन्धमें लोग अनेक प्रकारकी बातें कह दिया करते हैं, परन्तु बड़े आदमी कभी उनपर ध्यान नहीं देते?" शकुन्तलाकी मधुर-क्षमा-प्रार्थना सुन कर राजा, अपनी हंसीको न रोक सके। वे खिलखिला कर हंस पड़े।

इसी समय प्रियम्बदाकी दृष्टि एक घबड़ाये हुए मृग-वत्स पर पड़ी, वह उसे देखकर खड़ी हुई और उसके साथ ही अनसूया भी चल पड़ी। शकुन्तलाने बहुतेरा बुलाया। परन्तु वे 'अभी आती हैं।' कहकर चली गईं शकुन्तला भी इस रहस्यको समझ गई।

——*०*——

सप्तम-परिच्छेद ।

शकुन्तलाका विवाह ।

प्रियम्बदा और अनसूयाके वहांसे खिसक जानेके कारण शकुन्तला चञ्चल-भावसे इधर उधर देखने लगी। राजा दुष्यन्त शकुन्तलाको चञ्चल देख बोले,—"सुन्दरी, तुम अपनी सखियोंके लिये इतनी चञ्चल क्यों हो रही हो। सखियां चली गयी हैं, तो मैं सखा तो मौजूद हूं, जो आज्ञा हो कहो, अभी पालन करूंगा।" महाराजकी बात सुन कर शकुन्तला बोली,—"महाराज, आप चक्रवर्ती-पृथ्वीपति सम्राट् और मैं वनवासिनी दुःखिनी तपस्वी-कन्या! ऐसी बातें कह कर आप मुझे क्यों लज्जित करते हैं!" कह कर—शकुन्तला शिला-खण्ड परसे उठ कर खड़ी हो गयी और चलनेकी तैयारी करने लगी। परन्तु इसी समय शकुन्तलाका हाथ पकड़ कर राजा बोले,—"सुन्दरी, तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है, बड़ी सख्त गर्मी पड़ रही है। ऐसी दशामें इस लता-मण्डपसे बाहर जाना तुम्हारे लिये ठीक नहीं होगा।" कह कर उसे नहीं जाने दिया।

राजाके इस व्यापारसे झुञ्झला कर शकुन्तला बोली,—"महाराज, आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं! मैं कुमारी हूं। पराधीन हूं। मेरे अभिभावक मौजूद हैं। हटिये, छोड़िये मैं अपनी सखियोंके पास जाती हूं।" राजा दुष्यन्त शकुन्तलाका हाथ छोड़ कर खड़े हो गये और अपने इस कृत्य पर बड़े लज्जितसे हुए। परन्तु राजाको लज्जित एवं चकित देख शकुन्तला बोली,—"महाराज, लज्जित होने-

की कोई बात नहीं है। मैंने आपका कोई तिरस्कार अथवा अपमान भी नहीं किया। मैं तो अपने भाग्यको ही धिक्कारती हूं—जिसने मुझे पराधीन किया—और पराधीन ही किया था—तो मेरा किसी दूसरे व्यक्ति पर अनुराग ही क्यों हुआ!" यह बात कह कर शकुन्तला फिर चलने लगी, परन्तु राजाको शकुन्तलाकी पिछली बातसे फिर साहस हो गया था, इसलिये उन्होंने फिर उसका आंचल पकड़ लिया इस बार फिर शकुन्तला कुछ भयभीत सी होकर बोली,—"महाराज, यह आप क्या कर रहे हैं? यहांसे होकर अनेक ऋषि-मुनि आते-जाते हैं। यदि किसीने देख लिया तो, महा अनर्थ-घटित होगा। मुझे बड़ा भय लग रहा है।"

शकुन्तलाकी बात सुन कर राजा बोले,—"सुन्दरी, तुम इतनी घबड़ाती क्यों हो? इससे पहले भी इस प्रकारकी अनेक घटनायें हो चुकी हैं। अनेक ऋषियोंकी कन्याओंने मनोनुकूल बर पसन्द करके गान्धर्व-विवाह किये हैं। उनके अभिभावकोंने पीछे मालूम हो जाने पर उनका समर्थन ही किया है। महर्षि कण्व बड़े विद्वान् हैं, वे कभी भी इस सम्बन्धसे अप्रसन्न नहीं हो सकते!" उत्तरमें शकुन्तलाने कहा,—"महाराज, बात तो आपकी ठीक है, परन्तु इस घड़ी-भरकी मिलने वालीको भूल मत जाइयेगा!" कह कर शकुन्तला हाथ छुड़ाकर चट-पट चल पड़ी।

राजा देखते ही रह गये। उन्होंने भर्राई हुई जबानमें कहा,—"अच्छा, सुन्दरी अच्छा! तुम मेरा हाथ छुड़ा कर भले ही भाग जाओ, परन्तु हृदयसे निकल कर कहां जा सकती हो?"

शकुन्तला चली जा रही थी, परन्तु राजाकी बातको सुन कर वह वहीं ठिठक गई। यद्यपि वह मनसा-वाचा अपनेको एक प्रकारसे राजा दुष्यन्तके चरणोंमें समर्पण कर चुकी थी, परन्तु तब भी न

जाने वह क्यों कौतुकवश—राजाकी प्रेम परीक्षा करनेके लिये एक लता गुल्मकी ओटमें खड़ी होकर राजाके कार्य-कलापोंको देखने लगी। इधर राजा शकुन्तलाको चली गयी देख विरहसे ब्याकुल हो 'हा शकुन्तला ! हा ! शकुन्तला !!' कहते हुए बोले,—"शकुन्तले, तुम इतनी कठोर-हृदय हो ! मेरा हृदय चीर कर चली गई ! तुम्हारे बिना समस्त संसार सूना है !" इस प्रकारसे कहते हुए दुष्यन्त उठ कर खड़े हुए और बोले,—"अब मैं ही यहां बैठ कर क्या करूंगा ?" इतना कह कर थोड़ी ही दूर चले थे कि उन्हें पास ही पड़े शकुन्तला-के मृणाल-कङ्कण नजर पड़े। राजाने उनको उठा लिया और हृदयसे लगा कर बोले,—"हृदयेश्वरी, देखो तुम्हारे इन मृणाल-कङ्कणोंने निर्जीव और अचेतन होनेपर भी इस दुःखी हृदयको कितनी शान्ति दी है। परन्तु तुमसे इतना भी न हो सका !" लता-कुञ्जमें छिपी हुई शकुन्तला इस दृश्यको देख रही थी। अब उससे न रहा गया। पर अब वहां जानेमें लज्जा मालूम होती थी। किन्तु शकुन्तलाने एक उपाय सोचा। वह मृणाल-कङ्कणोंको तलाश करनेके बहानेसे ढूंढ़ती हुई उधरकी ओर चली गयी।

शकुन्तलाको फिर उधर आते देख राजा बड़े प्रसन्न हुए। हर्षातिरेकसे हर्ष-सागरमें बिना तरणीके तैरने लगे। शकुन्तला जब उनके समीप पहुंच गई, तो आनन्दसे अधीर होकर बोले,—"आ गई प्राणेश्वरी, देवताओंने कातर-प्रार्थना सुन ली ! मेरे दुःखको देख कर पिघल गये ! पिपासासे व्याकुल होकर चातकने जलके लिये प्रार्थना की और नव-जलधरने प्रसन्न होकर शीतल-जल-धारा उसके मुंहमें टपका दी।" शकुन्तलाने इतनेमें और भी आगे बढ़ कर कहा,—"महाराज, मैं अपने मृणाल-कङ्कण यहां भूल गई थी, लाइये दे दीजिये, मैं पहन लूं।" शकुन्तलाकी बात सुन कर राजा बोले,—"मृणाल-

कङ्कण इस प्रकारसे नहीं मिल सकते। आओ इस शिलापर बैठ जाओ तो मैं अपने हाथसे पहना दूं।" लाचार होकर अन्तमें शकुन्तला शिला-खण्ड पर बैठ गई और राजा दुष्यन्त और भी देर करके मृणाल-कंकण शकुन्तलाके कोमल हाथोंमें पहनाने लगे। परन्तु राजा-को अधिक देर करते देख शकुन्तला बोली,—"आर्यपुत्र, शीघ्रता कीजिये, मैं भयसे घबड़ा रही हूं—मुझे शीघ्र जाना है।" शकुन्तलाके मुंहसे 'आर्य-पुत्र' का सम्बोधन अपने लिये सुन कर राजा दुष्यन्त मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए। स्त्रियां स्वामीको ही 'आर्यपुत्र' कह कर पुकारती हैं। राजाने समझ लिया कि सब ठीक हो गया। मेरा भाग्य खुल गया। काम बन गया, शकुन्तलाने मुझे अपना स्वामी मान लिया। इस प्रकारसे प्रसन्न होते हुए राजाने मृणाल-कंकण पहना दिये और बोले,—"देखो—सुन्दरी, अब तुम कैसी अच्छी मालूम होती हो!" उत्तरमें शकुन्तला बोली,—"देखूं क्या खाक! आंखोंमें तो कुछ पड़ गया है।" राजा बोले,—"तो क्या भय है, मैं तो मौजूद हूं, लो अभी फूक मार कर आंखका तिनका निकाले देता हूं।" इस प्रकारसे कहते हुए राजाने आंखमें फूक मार दी—और तिनका निकल गया! शकुन्तलाकी आंख ठीक हो गई। शकुन्तलाने कहा,—"महाराज, वस अब ठीक हो गई। आपने बड़ी कृपा की। पर मैं इसका क्या बदला आपको दे सकती हूं।" राजा बोले,—"सुन्दरी मधुकर—कमलकी सुगन्ध पाकर ही कृतार्थ हो जाता है। तुम्हारे मुख-कमलकी सुवाससे परिश्रमका मूल्य मिल गया!" राजाकी बात सुन कर शकुन्तला बोली,—"महाराज, आप क्यों दिल्लगी करते हैं। इस एहसानका बदला भला मैं कैसे चुका सकती हूं?"

शकुन्तला हंस हंस कर बात कर रही थी। इसी समय शकुन्तला-ने सुना मानों कोई चकवीसे कह रहा है कि—"री चकवी, तू शीघ्र

अपने प्यारेसे बातें कर ले—यह रात्रि शीघ्र समाप्त हो जायगी। और शीघ्र ही सुप्रभात होगा !" शकुन्तला इस संकेतको समझ कर बोली,—"महाराज, देखिये, मेरी सखियां ही यहसंकेत कर रही हैं कि मेरी फूफी आर्य्या गौत्तमी मेरी बीमारीकी खबर लेने आ रही है। अब आप इस लता-मण्डपसे शीघ्र बाहर हो जाइये और कहीं छिप रहिये।"—अच्छा लो चला, फिर शीघ्र भेंट होनी चाहिये—कह कर राजा वहांसे चले गये और पासके ही एक लता-कुञ्जमें छिप कर सतृष्ण नयनोंसे शकुन्तलाको देखने लगे।

थोड़ी देरमें देवी गौत्तमी शान्ति-जलसे भरा हुआ कमण्डल हाथमें लिये आ पहुंची और बोली,—"बेटी शकुन्तला, सुना है आज तेरी तबीयत कुछ खराब है। पर देखती हूं अब तो तू कुछ अच्छी है।" शकुन्तला बोली,—"बुआ, अब तो ठीक है। दोपहर-को जरा तबीयत खराब रही।" उत्तरमें देवी गौत्तमीने पूछा कि अनसूया और प्रियम्बदा तुझे अकेली छोड़ कर कहां चली गईं ? शकुन्तला बोली,—"नहीं बुआ, वे दोनों अभी तक यहीं थीं, अब थोड़ी देर हुई मालिनी नदीके तट पर पानी लेने गई हैं। अभी आती होंगी।" देवी गौत्तमीने शकुन्तलाके समस्त शरीर पर शुद्ध-पवित्र जलका छींटा देते हुए आशीर्वाद दिया और बोली,—"बेटी, चलो अब शाम हो गई—आश्रमको चलो।" लाचार शकुन्तला पीछे पीछे चल पड़ी और राजा भी शकुन्तलाके चले जाने पर लता-कुञ्जको प्रिया-शून्य देख कर वहां से अपने डेरेको चले गये।

\+ \+ \+ \+

इसी प्रकारसे अनेक दिन बीत गये। राजा और शकुन्तलाका प्रेम, नित्य-नूतन प्रगाढ़ होने लगा। सदा ही कभी किसी लता-कुञ्जमें बैठ कर और कभी मालिनी-नदीके तट पर बैठ कर अनेक प्रकारसे

हास परिहास होता।—शकुन्तलाकी चिन्ता मिट गई दुष्यन्तका दारुण दुःख दूर हो गया।

प्राचीनकालमें विवाह योग्य अवस्था हो जाने पर बिना माता पिताकी सम्मतिके भी युवक-युवतियां परस्परमें प्रेम हो जानेसे विवाह कर लेते थे। उस विवाहको गान्धर्व-विवाह कहते थे। परन्तु अब वह समय नहीं रहा। उस प्रथाको नष्ट हुए हजारों वर्ष व्यतीत हो गये। अब इस प्रथाको बहुत निन्दनीय एवं घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है। परन्तु उस समय इस विवाहको बुरा नहीं समझा जाता था। सुतरां शकुन्तला और दुष्यन्तको जब इस प्रकारसे एक दूसरेके प्रति अत्यन्त अधिक अनुरक्त हुए—अनेक दिन बीत गये और मनसा-वाचा शकुन्तलाने अपनेको दुष्यन्तके चरणोंमें समर्पण कर दिया, तो राजा दुष्यन्तने शकुन्तलासे गान्धर्व-विवाह कर लिया। अपने मनके अनुकूल पति पाकर शकुन्तलाने अपनेको धन्य धन्य समझा और राजा दुष्यन्तने भी स्नेहमयी शकुन्तलाको पत्नी-रूपमें पाकर अपने भाग्यको सराहा और विवाहको पूर्व जन्मकी कठोर तपस्याका फल समझा। इसी प्रकरसे मास पर मास बीतने लगे। परन्तु सुखके दिन जाते देर नहीं लगती। राजाको राजधानीसे बुलावा आया कि उनके बिना राज-काज शिथिल हो रहा है। राजाका सुख-स्वप्न भङ्ग हो गया। कर्तव्य-ज्ञानने राजधानीको जानेके लिये विवश किया। शकुन्तलाको भी इसकी खबर मिली। वह बड़ी दुःखी हुई, परन्तु राजाने उसे अनेक प्रकारसे समझा बुझाकर शान्त किया और जाते समय कहा कि तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र पैदा होगा, वही युवराज होगा—और मैं शीघ्र ही तुमको आकर राजधानीमें ले जाऊंगा।

——:o:——



शकुन्तलासे बिदाई।

अष्टम-परिच्छेद ।

दुर्वासाका शाप ।

वियोग-व्यथासे व्याकुल रोती विलखती हुई शकुन्तलाको नाना प्रकारसे संतोष दिला कर राजा दुष्यन्त, तपोवनसे विदा हो गये और यथासमय अपनी राजधानीमें पहुंच गये ।

इधर शकुन्तला—राजाके वहांसे विदा हो जानेसे दुःखित हुई । खाना, पीना, हंसना-खेलना एक प्रकारसे बन्दसा हो गया । रात-दिन वियोगकी विरहाग्नि उसे मर्मान्तक पीड़ा पहुंचाने लगी । स्त्रीके लिये पतिके विना संसार सूना है । जैसे जलके विना नदी और प्राणोंके विना शरीर ।—मणि-विहीन सर्प जैसे तड़फड़ाता है, विना चन्द्रमाकी ज्योत्स्नाके जैसे अन्धकारमयी रात्रि, भांय-भांय करती है, कोकिल-कलरव विना जैसे वसन्त-ऋतु सूनी मालूम होती है, अग्नि विना शिखाके और गन्ध विना कुसुमके, वैसे ही पति-विहीना शकुन्तला अपनेको अनुभव करने लगी । उसका उन्मादकारी गुलावकी कली जैसा रङ्ग फीका पड़ गया । अङ्ग-प्रत्यङ्गमें विरहकी चिनगारियांसी लग गयीं । प्राणोंके भीतर निःशब्द हाहाकार हो उठा । राखसे ढकी हुई अग्निकी तरहसे वियोगाग्नि, शकुन्तलाको मर्मान्तक वेदना पहुंचाने लगी ।

इसी प्रकारसे दुःखके दिन बड़े कष्टसे बीतने लगे । एक दिन शकुन्तला अपने आश्रमके द्वार पर पतिकी चिन्तामें बैठी उनकी मधुर-स्मृतिमें तल्लीन थी । इसी समय कहींसे वहां दुर्वासा ऋषि आ

निकले। सायङ्कालका समय था। रात्रि समीप आती देख दुर्वासा-ऋपि शकुन्तलासे बोले,—"बेटी, मैं तेरा अतिथि हूं और आज तेरे ही आश्रममें विश्राम करूंगा।"

मुनि कण्व कहीं बाहर गये हुए थे। उनकी अनुपस्थितिमें आतिथ्यका भार सदा ही शकुन्तला पर रहता था, आज भी आतिथ्यका भार उसी पर था। दुर्वासा ऋपि जब वहां पहुंचे, तभी उसे उन्हें प्रणाम करना और पाद-प्रक्षालन कर सादर आसन देना चाहिये था। परन्तु आज शकुन्तलाको चुप-चाप और निस्तब्ध बैठी देख, दुर्वासा ऋपिने जब स्वयं उससे आश्रममें विश्राम करनेको कहा, तब भी वह चुप-चाप पत्थरकी क्षुब्ध-मूर्तिकी तरह बैठी ही रही! आदर स्वागत तो दूर रहा, उसने उनकी बातका उत्तर तक भी न दिया। शकुन्तलाकी उस समयकी आकृतिको देख कर ऐसा प्रतीत होता था, जैसे किसीका प्राणहीन और स्पन्द-हीन शरीर रखा हो। उसके प्राण स्नेहमय पतिके चरणोंमें लिप्त थे। पर दुर्वासा ऋपिको इसका क्या पता? वे शकुन्तलाको इस प्रकारसे कुछ भी उत्तर न देती देख, क्षुब्ध हो उठे। उनका शरीर क्रोधसे कांप उठा। क्रोधके आवेशमें उन्होंने समझा कि यह लड़की बड़ी अभिमानिनी है, मेरा अपमान करनेके लिये ही इसने चुप्पी साध रखी है। दुर्वासा गर्ज उठे और थरथर कांपते हुए बोले,—"अरी पापीयसी, तू अपने द्वार पर आये हुए अतिथिका अपमान करती है! जा! मैं तुझे शाप देता हूं कि तू जिसकी चिन्तामें इतनी लीन है कि तुझे कर्तव्या-कर्तव्यका ज्ञान भी नहीं रहा, वह तुझे भूल जाय! लाख कहने सुनने पर भी तुझे स्मरण न करे! दूधकी मक्खीकी तरहसे तुझे अपने मनसे निकाल कर फेंक दे!"

इधर यह काण्ड हो रहा था और उधर पास हीके एक उद्यानमें

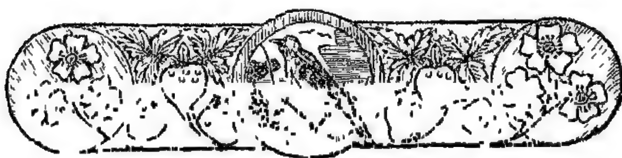
शकुन्तलाकी प्रियम्बदा और अनसूया दोनों सखियां, फूल तोड़ रही थीं। शकुन्तलाकी विरक्तिसे आज कल वे भी दुःखी थीं। बातों ही बातोंमें अनसूया बोली,—"सखी शकुन्तलाने पति तो मनके अनुकूल सद्गुण-सम्पन्न ही पाया है। गन्धर्व-रीतिसे विवाह भी कर लिया, यह भी अच्छा ही हुआ। परन्तु मुझे एक भय हो रहा है कि कहीं राजधानीमें जाकर राजा वनवासकी उस मधुर-स्मृतिको भूल न जांय। अन्तःपुर-वासिनी कामिनियां, उनका मन शकुन्तलाकी ओरसे फेर न दें!" उत्तरमें प्रियम्बदाने कहा,—"सखी, मुझे तो तुम्हारी आशङ्का निराधारसी ही मालूम होती है। महाराज बड़े उदाराशय, सत्यनिष्ठ और परम-धार्मिक हैं। ऐसा धर्म विरुद्ध कार्य कभी स्वप्नमें भी नहीं कर सकते।"—दोनों सखियां अभी इस प्रकार से बातें कर ही रही थीं, कि उनके कानोंमें दुर्वासा ऋषिका भीषण गर्जन सुनाई दिया। दोनों सखियां भयभीत और आशङ्कित-मन होकर दौड़ती हुई आश्रमके द्वार पर पहुंची। दोनों मनमें सोच रही थीं कि आज किसी महा अनर्थका सूत्रपात हुआ है। 'कण्व-ऋषि तो स्वयं पात्रके लिये चिन्तित थे, वे तो इस विवाहसे असन्तुष्ट न होंगे, क्योंकि उनकी चिन्ता स्वयं दूर हो गई।' इस प्रकारसे नाना प्रकारकी कल्पनायें करती हुई आश्रमके द्वार पर देखती क्या हैं कि भीषण-मूर्ति थर थर कांपते हुए दुर्वासा-ऋषि, शकुन्तलाको कुछ शाप देकर चले जा रहे हैं! दोनों सखियां ऋषि दुर्वासाको थर थर कांपते देख कर सहम गईं। परन्तु थोड़ी ही देरमें दोनोंने कुछ सलाह की और प्रियम्बदा भाग कर दुर्वासा ऋषिके चरणों पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगी। दुर्वासा ऋषि कुटिल-क्रोधी थे। वे पांव छुड़ाकर आगे बढ़ने लगे, परन्तु प्रियम्बदा भी कब माननेवाली थी। वह भी ऋषि दुर्वासा को मनानेके लिये हाथ धोकर पीछे पड़ गई। अन्तमें दुर्वासा प्रिय-

म्वदाके अनुनय विनयसे जरा शान्त हुए और वहीं ठहर गये। प्रियम्वदा कहने लगी,—"महामुने, शकुन्तला अबोध बालिका है। आपकी कन्याके समान है। वह आपकी महिमा और गुण-गरिमाको क्या जाने? आप उसका अपराध क्षमा कीजिये। भ्रम और भूलसे बालक यदि कोई अनुचित काम कर दे, तो गुरुजनों और माता-पिताको प्रमोद समझ कर क्षमा कर देना चाहिये। शकुन्तला बालिका है। मच्छर पर तोप चलाना और कुसुम-कलिका पर वज्र-प्रहार करना, बड़े आदमियोंको शोभा नहीं देता! इस लिये महाराज सहृदय हूजिये और बालिका-शकुन्तला पर दया कीजिये।" प्रियम्वदाकी युक्तिपूर्ण बातको अनुनय-विनयके स्वरमें सुन कर मुनिराज कुछ और ठण्ढे हुए और बोले,—"जो शाप मेरे मुंहसे निकल गया है, वह तो पूरा होकर ही रहेगा। परन्तु यदि वह अपने प्रेम-पात्रको उसका दिया कोई चिन्ह दिखा सकेगी, तो उसका शाप दूर हो जायगा और उसका प्रेमी उसे पहचान लेगा।" इतनी बात कह कर खट-खट करते हुए दुर्वासा-ऋषि, चले गये। प्रियम्वदा भी लौट आई और उसने सब वृत्तान्त अनसूयाको कह सुनाया। पहले तो दोनों सखियां चिन्तासागरमें गोते खाने लगीं। परन्तु तुरन्त ही उन्हें ख्याल आया कि राजा दुष्यन्त जो अंगूठी शकुन्तलाको दे गये हैं, उसीसे यह कार्य सम्पन्न होगा। परन्तु शकुन्तलाको यह संवाद कभी न बताना चाहिये, नहीं तो भयङ्कर विपद् उपस्थित हो जायगी।

इसी प्रकारसे विचार करती हुई दोनों सखियां, शकुन्तलाके पास पहुंची। देखा शकुन्तला निर्जीवसी हो प्रस्तर-मूर्तिकी तरहसे अवाक् और निश्चेष्ट बैठी है! स्वामीकी चिन्तामें लीन है। वह ऐसी मालूम होती है, जैसे उसका निर्जीव देह यहां पड़ा हो और प्राण, दूर-देशमें बसे हुए प्राणनाथ दुष्यन्तके चरण-कमलोंमें भ्रमर बन कर गूंज रहे

हों! शकुन्तलाको इस दशामें स्थिर देख अनसूया बोली,—"सखी-प्रियम्वदा, शकुन्तला सच्ची पतिव्रता है। उसके मन और प्राण सदा स्वामीके चरणोंमें निवास करते हैं। सच है सखी, पतिव्रता स्त्रियोंके स्वामी चाहे जहां हों, परन्तु सतियोंके मानस-मन्दिरमें वे नित्य और प्रतिक्षण वर्तमान रहते हैं। स्वामीके दूर रहने पर भी ऐसी एकाग्रता रहनेसे सतियोंको विरह-दुःख नहीं होता। संसारकी समस्त चिन्तायें दूर हो जाती हैं। पति-प्रेम और भी प्रगाढ़ और स्निग्ध हो जाता है।"

इसके बाद दोनों सखियां शकुन्तलाको हाथसे हिला कर सजग करके अनेक प्रकारकी आमोद-प्रमोदकी बातें कहती हुईं उसके मनको बहलाने लगीं।



नवम-परिच्छेद ।



शकुन्तलाकी यात्रा ।



इसी प्रकारसे दिन पर दिन बीतने लगे। कुछ दिनोंके बाद ऋषि-कण्व भी सोमतीर्थसे लौट आये। अपने तपोवनमें पहुंच कर उन्होंने सुना कि उनकी अनुपस्थितिमें राजा दुष्यन्त वहां शिकार खेलने आये और शकुन्तलासे गान्धर्व–रीतिसे विवाह कर चले गये। इस समय शकुन्तला गर्भवती है। उस युगमें गान्धर्व-विवाह घृणाकी दृष्टि से नहीं देखा जाता था। फिर राजर्षि विश्वामित्रके औरस और मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुई कन्या शकुन्तलाका, क्षत्रिय-संतान-चक्रवर्ती-सम्राट्की पत्नी होना तो गर्व और गौरवकी ही बात थी। ऋषि-कण्व इस विवाहसे प्रसन्न ही हुए और उन्होंने शकुन्तलाको शुभाशीर्वाद दिया—तथा शीघ्र ही उसको उसके श्वसुरालमें भेज देनेकी तैय्यारी करने लगे। क्योंकि विवाह हो जाने पर कन्याका पतिके घरमें ही रहना उचित है! कन्या पिता माताकी दो दिनकी पाहुनी होती है। पतिके घरमें ही रहना—कन्या और उसके माता-पिताके लिये कल्याणकारी है।

सुतरां ऋषि कण्वने शकुन्तलाको उसके पतिके घर भेजनेकी यथासमय तैय्यारी कर दी। देखते ही देखते विदाईका दिन आ पहुंचा। बुआ गौत्तमी और ऋषि-कण्वके शिष्य-शाङ्गरव और शारद्वत शकुन्तलाके साथ जाकर छोड़ आनेके लिये निश्चित हुए। अन-

सूया और प्रियम्वदाने शकुन्तलाकी बेणी बांध दी। अनेक प्रकारके पुष्प-हारों और कुसुम-कङ्कणोंसे उसे सजाने लगीं।

इधर शकुन्तलाकी विदाईकी बात सोचते हुए ऋषि कण्व मनही मन एक प्रकारसे अनिर्वचनीय-आनन्द-मिश्रित-दुःखको अनुभव करने लगे। वे मन ही मन सोचने लगे,—"मैं संसारत्यागी, विरक्त, ब्रह्मचारी, राग-रहित-तपस्वी हूं। परन्तु न जाने आज शकुन्तलाको विदा होती देख कर क्यों रोमाञ्च हुआ जाता है! आंखोंमें आंसू आ रहे हैं। संसारी लोगोंकी कन्याकी विदाईके समय क्या दशा होती होगी। वे इस दारुण-वियोग-व्यथाको कैसे सहन करते होंगे। स्नेह और ममतासे पाली हुई कन्याको विदा करते समय उनकी छाती फटती होगी। ब्रह्मचारी-विरक्त—तपस्वी पर ही जब इस स्नेहका ऐसा रोमञ्चकारी प्रभाव पड़ता है, तो बेचारे संसारी लोगोंकी तो बात ही क्या है। अच्छा बेटी—शकुन्तले, जा तू अपने घर जाकर सुखसे दिन व्ययीत कर!"

शकुन्तला बिदा होनेके लिये मुनिराजके सामने डबडबाई हुई आंखोंसे आकर खड़ी हुई। मुनि-कण्व तो पहले ही से वियोग-व्याकुल हो रहे थे, वे आंखोंमें आंसू भरे—और उमड़ते हुए हृदयको किसी प्रकारसे दबा कर बोले,—बेटी शकुन्तले, तू पतिके घर जानेके लिये तैयार हो गई! अच्छा बेटी जा और सुख तथा आनन्दके साथ चली जा! बेटी, मैं आशीर्वाद देता हूं—तू चिर-सौभाग्यवती हो!" आशीर्वाद देते हुए तपस्वी कण्व रो पड़े—और पास खड़े हुए लोग भी रोने लगे। शकुन्तला सिसकियां भर कर रोने लगी।

करुणाके आवेगसे आर्द्र हो, तपोवनकी तरु-श्रेणीको सम्बोधन कर महर्षि कण्व बोले,—"हे इस तपोवनके तरु-लताओ, देखो जो तुम्हें सींचे बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करती थी, वही शकुन्तला

आज अपने स्वामीके घर जा रही है ! तुम उसे आशीर्वाद दो कि उसकी यह मङ्गल-यात्रा सानन्द सम्पन्न हो, उसका सौभाग्य अचल और जीवन पुण्यमय हो।" इस प्रकारसे रोते हुए महर्षि कण्वने शकुन्तलाको विदा किया। शकुन्तला उठ कर सखियोंसे मिलने गई। बाहर प्रियम्वदा खड़ी थी। प्रियम्वदाका हाथ पकड़ कर शकुन्तला बोली,—"प्रिय सखी, यद्यपि स्वामीके दर्शनोंके लिये हृदय व्याकुल हो रहा है, परन्तु सङ्गी-साथियों और आश्रमसे बिछुड़ते हुए पांव आगे नहीं बढ़ते। प्राण कांप रहे हैं।" शकुन्तलाकी बात सुन कर थर्राये हुए स्वरमें आंखें पोंछती हुई प्रियम्वदा बोली,—"प्यारी सखी, इस वियोगसे तुम्हारी ही यह दशा नहीं हो रही है, समस्त तपोवन और इसके पशु-पक्षी तथा तरु-लता तक इस विषम-वियोग को अनुभव कर रहे हैं। हरिण घास नहीं खाते। मोर नाचते नहीं। कोयल आमकी मञ्जरियोंका रसास्वादन छोड़ कर निस्तब्ध हैं। लता-गुल्मों पर मंडराने वाले भ्रमर, अपना स्वाभाविक गुञ्जन छोड़ कर लापता हैं।" प्रियम्वदा अभी अपनी वियोग-व्यथाको प्रकट कर ही रही थी कि इसी समय कण्व-मुनिने समीप आकर कहा,—"बेटी, अब देर न करो। समय बहुत हो गया है।"

पिताकी बात सुनकर शकुन्तला वन-तोषिणी नामक लताके पास जाकर बोली,—"प्यारी, अपनी शाखा—रूपिणी विशाल भुजायें फैलाकर एक बार आलिङ्गन करो ! मैं सदाके लिये अब तुमसे विदा होती हूं। अब कभी भेंट होगी या नहीं, इसका कोई ठिकाना नहीं !" इस प्रकारसे अश्रु विसर्ज्जन करती हुई शकुन्तला उससे लिपट गई ! हृदयकी अग्नि कुछ शान्त होनेपर प्रियम्वदा और अनसूयाको सम्बोधन कर बोली,—"प्रिय सखियो, आजसे वनतोषिणी तुम्हारे सुपुर्द है ! इसकी सेवा करना आजसे तुमपर छोड़ती हूं।" दोनों सखियों

ने रोते हुए कहा,—"सखी, इसका तो तू सन्देह ही मत कर। तुझ द्वारा पालित पोषित इस लताकी हमेशा खबर रखेंगी। पर तू यह तो बता कि हमें किसके भरोसे पर छोड़ कर चली ?" इस प्रकारसे जब दोनों सखियां शकुन्तलाका हाथ पकड़ कर रो रही थीं, उसी समय महर्षि कण्वने आकर दोनोंको सम्बोधन कर कहा,—"बेटी, तुमको तो स्वयं शकुन्तलाको समझाना चाहिये था और उसकी वियोग-व्यथाको दूर करना चाहिये था, परन्तु तुम स्वयं अधीर होकर रो रही हो ! जाओ बेटी, जाओ और अपनी प्यारी सखीको आनन्द से विदा करो और बेटी शकुन्तला, तू भी अपने मनको शान्त कर और अधिक विलम्ब अच्छा नहीं है।" कण्व-मुनिकी बात सुनकर शकुन्तला चल पड़ी और थोड़ी दूर पड़ी हुई एक गर्भिणी हरिणीको देखकर बोली,—"पिताजी, मुझे आश्रमके पशु-पक्षियोंसे जैसा प्रेम है, उसे आप जानते हैं। इस गर्भिणी हरिणीके जब बच्चा पैदा हो, तो मुझे सूचना देना।" कण्व-मुनिसे स्वीकारोक्ति कराकर शकुन्तला अब जरा वेगसे चलने लगी। परन्तु थोड़ी दूर आगे बढ़कर देखती क्या है कि पीछेसे कोई उसका कपड़ा पकड़ कर खींच रहा है ! शकुन्तला ने अवाक् दृष्टिसे पीछेकी ओर घूम कर देखा तो एक हरिणका अनाथ बच्चा, शकुन्तलाका आंचल पकड़कर पीछेकी ओर खींच रहा है ! जबसे उसकी माताका स्वर्गवास हुआ था, उस मृगके बच्चेको शकुन्तलाने माताकी तरहसे पाला-पोसा था। शकुन्तला मृगके बच्चेको गलेसे लगा कर रोने लगी और विनीत शब्दोंमें विदा मांगने लगी। कण्व-मुनि फिर शकुन्तलाको धैर्य देकर आगे चलनेको कहने लगे। शकुन्तला चल पड़ी। क्षीर-वृक्षके पास पहुंच कर कण्वमुनिके शिष्य शाङ्गरवने अपने गुरुको सम्बोधन कर कहा,—"भगवन्, अब आपको जो कहना है कहकर समाप्त कर दीजिये। इस प्रकारसे बीच-

बीचमें ठहरनेसे तो बड़ी देर हो जायगी। अब आप यहांसे पीछे लौट जाइये।" महर्षि कण्व शिष्यकी बात सुनकर क्षीर-वृक्षके नीचे खड़े हो गये। बुआ गौतमी, दोनों शिष्य जो शकुन्तलाको छोड़ने जा रहे थे, शकुन्तला सहित ठहर गये। ऋषि कण्वने शार्ङ्गरवको सम्बोधन कर कहा,—"वत्स, शकुन्तलाको राजाके यहां पहुंचा कर मेरा संदेश कहना कि हम लोग वनवासी हैं। योग-तप और व्रत करके जीवन व्यतीत करते हैं। तुमने उच्च-कुलमें जन्म लिया है। शकुन्तलाके आत्मीय जनोंको बिना जनाये ही तुमने उसके साथ गान्धर्व-बिवाह किया है। अतः अपनी अन्य सहधर्मिणियोंकी तरहसे शकुन्तला पर भी सदा स्नेहकी दृष्टि रखना। इसके बाद जो इसके भाग्यमें लिखा है वह होगा।" इसके बाद शकुन्तलाको सम्बोधन कर महर्षि कण्व बोले,—"बेटी, हम वनवासी हैं, परन्तु शिष्टता और सभ्यताको हम लोग भी जानते हैं। पतिके घरमें जाकर गुरु-जनोंकी आज्ञा पालन करती हुई उनकी सेवा शुश्रूषा करना। अपनी सौतिनोंको सखी समझना। दास-दासियों पर सदा दया रखना। कभी सौभाग्यका घमण्ड मत करना। अपने शील-व्यवहारसे संसार को दास बनाया जा सकता है। उलटा चलनेसे कुल-कण्टक और कुल-संहारिणी कहलाओगी। पतिके क्रोध करनेपर भी कभी दुर्वचन न कहना, कुलीनोंका यही कर्तव्य है। अपनी बुआसे पूछ देख, मैं ठीक कह रहा हूं—या नहीं।" कण्वमुनिकी बात समाप्त होनेपर बुआ गौतमीने भी कण्व मुनिकी बातका अनुमोदन किया।

शकुन्तला पिताकी बात सुनकर और भी रोने लगी। मुनि कण्वके यह कहनेपर कि, बेटी अब शीघ्र जाओ, यात्राके मुहुर्त्तमें देरी हो रही है, अपनी सखियोंसे मिल लो, शकुन्तला दोनों सखियोंके हाथ पकड़ कर रोती हुई बोली,—"पिताजी, इन बाल्य-सखियोंसे कैसे

विदा लूं ? क्या दया कर इनको भी मेरे साथ वहां तक नहीं भेज देंगे ?" उत्तरमें महर्षि कण्व बोले,—"बेटी, तुम्हारे साथ ये दोनो मेरे शिष्य और तुम्हारे भाई तथा तुम्हारी बुआ गौत्तमी जा रही है। प्रियम्वदा और अनसूयाका अभी विवाह नहीं हुआ। इनका वहां जाना ठीक नहीं है।"

कण्व मुनिकी बात समाप्त होनेपर शकुन्तला—ऋषि कण्वके गलेसे लिपटकर रोती हुई कहने लगी,—"पिताजी, मैं तुम्हें वहां न देखकर कैसे जीवित रहूंगी ?"

शकुन्तलाको अत्यन्त अधीर होते देख, महर्षि कण्वने कहा,—"बेटी, गृहिणी-पद पर अधिष्ठित होनेपर तेरा यह मोह नष्ट हो जायगा। अपनी कन्याको उसके पतिके घर भेजते समय माता-पिता का हृदय विदीर्ण हो जाता है। अपने स्नेह-धनको सदाके लिये दूसरेके हाथमें सौंपते हुए छाती फटने लगती है। परन्तु मनुष्य-जाति के मङ्गलके लिये, नारी-धर्मकी रक्षाके लिये, नारीको पृथ्वीपर अलौकिक प्रेमका आदर्श स्थापित करनेके और देवी होनेका अवसर देने के लिये यह आत्मत्याग सभीको करना पड़ता है। स्त्रियां सदा पीहरमें नहीं रहतीं। सदा पीहरमें रहनेवाली स्त्रियोंके यश, चरित्र और धर्मपर आघात होता है। पतिका घर ही स्त्रीके लिये स्वर्ग है। बेटी, ससागरा पृथ्वीके अधिपति महाराज दुष्यन्तकी पटरानी बनने के अनन्तर अपने अतुलित बलशाली और यशस्वी पुत्रको राजसिंहासनपर बैठाकर अपने पतिके साथ फिर इस तपोवनमें आना।"

पिता कण्वकी बात सुनकर शकुन्तला और भी रोने लगी, तब बुआ गौत्तमीने समझाकर अपनी सखियोंसे मिल लेनेके लिये कहा। शकुन्तला रोती हुई दोनों सखियोंके गलेसे मिलकर रोती हुई बोली कि,—"सखियो, इस बाल्य-सहचरीको भूल मत जाना !" शकु-

न्तलाकी बात सुनकर दोनों सखियां रोती हुई बोलीं,—"सखी, अच्छा अब जा, भगवान् तेरा मङ्गल करें। किन्तु एक बातका ख्याल रखना। राजा किसी कारणवश यदि तुझे भूल गये हों और पहचान न सकें, तो तू उनकी दी हुई उनके नामकी यह अंगूठी दिखा देना।"

सखियोंकी बात सुनकर शकुन्तला शङ्कित, भीत एवं विह्वलसी होकर इस शङ्काका कारण पूछने लगी। परन्तु सखियोंसे स्नेहातिरेकसे उत्पन्न स्वाभाविक शङ्का बताकर उसे सन्तुष्ट कर दिया। शकुन्तला शान्त हुई और पिता कण्वके पांवोंपर गिरके प्रणाम कर दोनों शिष्यों और बुआ गौत्तमीके साथ चल पड़ी। अनसूया और प्रियम्वदा ऋषि कण्व सहित बड़ी देरतक उनको देखते रहे। शकुन्तला जब ओझलमें हो गई, तो प्रियम्वदा और अनसूया फूट-फूट कर रोने लगीं। ऋषि-कण्वने किसी प्रकारसे समझाकर दोनोंको आश्रमको चलनेको कहा और स्वयं भी मन ही मनमें इस प्रकारसे विचारते हुए कि जिसकी धरोहर थी, उसको लौटाकर अर्थात् शकुन्तलाको उनके पतिके घर भेजकर निश्चिन्त हो गये, कण्व मुनि शकुन्तलाकी दोनों सखियोंको साथ लेकर आश्रमकी ओरको अग्रसर हुए।

दशम-परिच्छेद

शापका प्रभाव ।

एक दिन राजा दुष्यन्त अपने मित्र माढव्यके साथ बैठे हुए हंस-पादिका नामकी परिचारिकाका गीत सुन रहे थे । गीत बड़ा ही मधुर था । उसके गानेका ढङ्ग-स्वर और भाव, लोगोंके मनको आकर्षित करने वाला था । राजा बड़े ध्यानसे सुनने लगे । उस गीतमें कविने मधुकरको सम्बोधन कर कहा था,—"हे मधुकर, प्रेम तो सभी करना चाहते हैं, पर प्रेमका पथ बड़ा ही कण्टकाकीर्ण है । बिना प्रतीतिके प्रीतिका मूल्य वैसा ही है, जैसे ज्योतिके बिना ज्वाला या बालूकीसी भीत । प्रीति करनी हो तो उसीको हृदयासन पर बैठाना चाहिये । दूसरेके लिये फिर वहां स्थान नहीं । हे मधुकर, तुम विश्वास खो चुके । तुम्हारी प्रीतिका कोई मूल्य नहीं । तुम निठुर हो !"

इस गानको सुन कर राजा दुष्यन्तके हृदयमें तूफानसा आ गया । उच्चाटनसा हो गया । कोई अज्ञात-स्मृति जाग उठी । नींदसी खुल गई । परन्तु स्वप्न समाप्त होने पर जब आंख खुली तो, स्वप्नकी घटना याद न रही । एक स्वप्न हुआ है, यह तो याद रहा, पर स्वप्न क्या था, कुछ स्मरण न रहा । राजा मन ही मन सोचने लगे कि प्रियजनोंके विरहके अतिरिक्त ऐसी व्याकुलता नहीं होती । परन्तु विरह तो किसीका नहीं हुआ है । फिर सोचने लगे कि मनुष्य सब

तरहसे सुखी रहने पर भी रमणीय वस्तुके दर्शन और मनोहर संगीत के श्रवणसे अकस्मात् व्याकुल हो उठता है। पूर्व-जन्मकी स्थिर-प्रीति की छाया अस्पष्ट-रूपसे उसके स्मृति-पथ पर आरूढ़ हो जाती है। शायद उसी प्रकारसे मेरे मनका भी उच्चाटन हो रहा हो !

इस प्रकारसे राजा जब मन ही मनमें अनेक बातें सोच रहे थे, इसी समय कंचुकी—अन्तःपुरके संरक्षकने—धर्मारण्यके निवासी दो ऋषि-कुमारोंके आनेकी सूचना दी और कहा कि वे महर्षि कण्वका कोई सन्देश लेकर आये हैं। तपस्वी-कुमारोंके आगमनकी बात सुन कर उपाध्याय सोमगत द्वारा सादर उन्हें भीतर लिवा लानेकी राजा ने आज्ञा दी—और स्वयं भी स्वागत-स्थानमें जाकर बैठ गये। कंचुकी-ऋषि-कुमारोंको लिवानेके लिये चला गया।

राजा सिंहासन पर बैठ कर सोचने लगे कि महर्षि कण्वने किस लिये मेरे पास दो ऋषि-कुमारोंको सन्देश लेकर भेजा है ? उनकी तपस्यामें तो कोई विघ्न उपस्थित नहीं हो गया है ! तपोवनमें जाकर ऋषि-मुनियों पर कोई अत्याचार तो नहीं करने लगा है। फिर वे क्या संदेश लाये हैं ? राजा इसी प्रकारसे मन ही मनमें विचार कर रहे थे। पास ही खड़ी परिचारिकाने राजाको कुछ उद्विग्न देख कहा,—"महाराज, तपोवनके ऋषि-मुनिगण आपके शासनके प्रभावसे निर्विघ्न और निरापद भावसे—तप-अनुष्ठान कर रहे हैं। मालूम होता है, उसीके लिये आपको धन्यवाद देने आये हैं।" परिचारिका अभी अपनी बात समाप्त कर राजाके मुखकी ओर देख ही रही थी कि इसी समय उपाध्याय सोमरात तपस्वियोंके साथ वहां उपस्थित हुए। राजाने उनके लिये आसन छोड़ दिया और स्वयं स्वागत करनेके लिये खड़े हो गये। सोमरातने तपस्वियों सहित जरा और आगे बढ़ कर राजाकी ओर संकेत करते हुए कहा,—"वह देखिये,

ससागरा पृथ्वीके अधिपति आपके लिये आसन छोड़ कर स्वागत करनेको खड़े हैं।"

सोमरातकी बात सुन शार्ङ्गरवने कहा,—"राजाओंमें ऐसी शिष्टता और सौम्यताको देखकर अपार हर्ष होता है। विशाल तरु, फलोंके बोझसे झुक जाते हैं। वर्षा-ऋतुमें मेघ नवीन जलके भारसे पृथ्वी पर लटक आते हैं। इसी प्रकारसे बड़े आदमी भी प्रभुताके मदमें मत्त न होकर जो नम्रता और सद्भावका अवलम्बन करते हैं, वही वास्तवमें बड़े हैं।" शार्ङ्गरव जब इस प्रकारसे राजाकी प्रशंसा कर रहे थे, ऋषिकुमारोंके पीछे खड़ी हुई शकुन्तलाकी दाहिनी आंख फड़कने लगी! इस अपशकुनसे कुछ भयभीत एवं आशङ्कित हो शकुन्तलाने बुआ-गौत्तमीको इसकी सूचना देते हुए कहा कि मस्तकमें चक्कर आ रहा है। किसी भावी विपत्तिकी आशङ्का हो रही है। जी घबड़ा रहा है। बुआ-गौत्तमीने कहा,—"बेटी घबड़ा मत! तेरे पतिकुलके देवता तेरा मङ्गल करेंगे।" पर शकुन्तलाका मन स्थिर न हुआ। वह और भी घबड़ा उठी। इसी समय एकाएक शकुन्तला को देख, राजा धीरे धीरे कहने लगे,—"वह अवगुंठनवती रमणी कौन है? तपस्वियोंके साथ इसका कैसे आगमन हुआ? राजाकी बात सुनकर पास ही खड़ी परिचारिकाने कहा,—"महाराज, मैंने भी जबसे उसे देखा है, कोई बात स्थिर नहीं कर सकी। परन्तु ऐसी रूप-लावण्यता कभी देखनेमें नहीं आई है।"

राजाने परिचारिकाका जरा तिरस्कार करते हुए कहा,—"परस्त्रीको देखना या उसके सम्बन्धमें बात करना पाप है।"

इधर शकुन्तला अपने चञ्चल हृदयको सान्त्वना देती हुई मन ही मन कहने लगी,—"हृदय, व्याकुल क्यों होते हो? आर्यपुत्रके उस समयके भावोंको स्मरण कर धैर्य धारण करो! घबड़ाओ मत!"

इधर तपस्वियोंने राजाके पास जाकर राजाके प्रणाम करने पर उनको आशीर्वाद दिया—और राजाने भक्तिपूर्वक उनको आसन ग्रहण करनेके लिये कहा। दोनों तपस्वीकुमार दो आसनों पर बैठ गये, तब राजाने पूछा,—"क्यों भगवन् तपस्या तो सानन्द सम्पन्न हो रही है न ?" उत्तरमें ऋषिकुमारोंने यथोचित शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए कहा,—"महाराज, सूर्यके प्रकाशमें क्या कभी अन्धकार हो सकता है ? आपके शासनमें क्या कभी विघ्न उपस्थित हो सकता है।" ऋषिकुमारोंकी बात सुनकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना राजा होना सार्थक समझा। इसके बाद राजाके महर्षि कण्व की कुशल-क्षेमकी बात पूछनेपर ऋषिकुमारोंने कहा,—"हां, महाराज ! महर्षि सानन्द याग-यज्ञमें लगे हैं !"

इस प्रकार शिष्टाचार समाप्त होनेपर ऋषिकुमार शार्ङ्गरवने कहा,—"महाराज, हम महर्षि कण्वका जो संदेश लाये हैं, वह इस प्रकारसे है, आप जरा मन लगाकर सुनिये।" उन्होंने कहा है,—"आपने मेरी अनुपस्थितिमें मेरी कन्याका जो पाणिग्रहण किया है, सोमतीर्थसे लौटनेपर मुझे सब ज्ञात हुआ—बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं समझता हूं कि शकुन्तला बड़ी सौभाग्यवती है, जिसे आप जैसा पति मिला। इस समय आपकी सहधर्मिणी शकुन्तला गर्भवती है, अतः उसे अपने अन्तःपुरमें स्थान देकर अनुगृहीत कीजिये। यही हमारे गुरु कण्व-मुनिका अनुरोध, संदेश-प्रार्थना जो कुछ समझिये है—जिसे लेकर हम लोग उपस्थित हुए हैं।"

शार्ङ्गरवकी बात समाप्त होनेपर बुआ गौत्तमीने कहा,—"महाराज, मैं भी एक निवेदन करती, परन्तु आप दोनोंमेंसे तो मुझसे न कण्व ऋषिसे किसीने भी कुछ नहीं पूछा—और गान्धर्व-विवाह कर लिया ! इसलिये जो काम तुम दोनोंने स्वयं कर लिया है—तीसरेके

हस्तक्षेपकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं रही !" इधर तो बुआ गौत्तमी इस प्रकारसे कह रही थी और उधर शकुन्तला मन ही मन शङ्कित और संकुचित होकर सोच रही थी कि, देखें आर्यपुत्र इन बातोंका क्या उत्तर देते हैं !

इसी समय दुर्वासाके शापके प्रभावसे शकुन्तलाके साथ विवाहकी बातें भूलकर राजा दुष्यन्त बोले,—"वाह ! मैं कैसे आश्चर्यकी बात सुन रहा हूं ?" राजाकी विस्मयजनक बातको सुनकर शकुन्तला तो अधमरीसी हो गई। हृदय बड़े जोरसे धड़कने लगा। गला भर आया।

राजाकी अद्भुत बात सुन कर ऋषिकुमार शार्ङ्गरव बोले,—"महाराज, आप ससागरा पृथ्वीके अधिपति हैं। लोक-व्यवहारके ज्ञाता हैं। विवाहिता नारी चाहे जितनी साध्वी, शीला और पति-व्रता हो, तथापि वह सदा पिताके घर नहीं रह सकती। इससे दोनों कुलोंपर कलङ्क लगता है। स्त्री—पतिकी प्यारी न हो, वह उसका तिरस्कार करता हो, बुरी तरहसे रखता हो, तब भी उसके माता-पिता अपनी कन्याको उसके पतिके घरमें ही रहती हुई देख कर प्रसन्न होते हैं।"

राजा बोले,—"गुरुदेव, आपने जो उपदेश दिया है, वह ठीक है। पर मुझे तो आपकी सारी बात ही कहानीसी मालूम होती है। मुझे तो यह स्मरण भी नहीं कि मैंने इस कन्याके साथ कभी विवाह किया था।" राजाकी इस बातको सुन कर शकुन्तलाके हृदय पर बज्र-प्रहारसा हुआ। मन ही मन वह कहने लगी कि आखिर जो भय था वही हुआ !

राजाकी बात सुनकर शार्ङ्गरवने कहा,—"महाराज, आप धर्म संस्थापनाके लिये राजा हुए हैं। धर्मके विरुद्ध कार्य न करके आप

ही बताइये कि इसका क्या उपाय है ? महाराज, यह राजमदका अपराध है !" राजा बोले,—"देव, आप निराधार कलङ्क लगाकर मेरा तिरस्कार कर रहे हैं।"

इस तरह राजाको बार-बार अस्वीकार करते देख, गौत्तमीने शकुन्तलाको सम्बोधन कर कहा,—"बेटी, लज्जा न करना। मैं तेरा घूंघट खोले देती हूं, जिसमें राजा तुझको देखकर पहचान जायें।" इस तरहसे कहकर गौत्तमीने घूंघट खोल दिया। किन्तु इससे भी कुछ फल न हुआ। राजा चुप-चाप बैठे रहे। महाराजको इस प्रकार चुप्पी साधे बैठे देख, शाङ्गरवने कहा,—"महाराज, आप ऐसे चुप क्यों हो रहे ? कुछ कहिये।" राजाने कहा,—"तपस्वीजी, मैं क्या कहूं ? मुझसे तो कुछ कहा ही नहीं जाता। मैंने बहुत सोच-विचार कर देखा, परन्तु मुझे यह किसी तरह याद नहीं आता, कि मैंने इस स्त्रीको कहीं देखा है ? पाणि-ग्रहण करनेकी तो बात ही अलग है। ऐसी अवस्थामें मैं कैसे इसे अपनी पत्नी-रूपसे ग्रहण कर सकता हूं ? विशेषत: ऐसे समयमें जब कि वह गर्भवती है।"

राजाके इस वचन-विन्यासको श्रवण कर, शकुन्तलाने मन ही मन कहा,—"हाय सब चौपट हुआ ! इन्होंने तो पाणि-ग्रहणकी भी बात उड़ा दी !"

राजाकी बात सुन शाङ्गरवने कहा,—"महाराज, तनिक विचार तो कीजिये, कि महर्षि कण्वने आपके साथ कैसी महानुभावता दिखायी है ! आपने उनके आश्रममें न रहनेपर बिना उनकी अनुमति लिये उनकी आज्ञाकी कुछ आवश्यकता न समझ कर, उनकी कन्याके साथ विवाह किया, परन्तु उन्होंने सब कुछ भूलकर आप पर किसी तरहका क्रोध या असन्तोष न प्रकट कर, उलटी प्रसन्नता ही प्रकट की और अपनी कन्याको आपके निकट भेजा ! आप ऐसे

उदार, सदाशय, महानुभाव और महात्मा महर्षिकी कन्याका निरादर कर रहे है !"—शकुन्तलाके साथ महर्षिका जो शारद्वत नामक दूसरा शिष्य आया था, वह शाङ्गरवकी अपेक्षा बड़े कड़े स्वभावका आदमी था। उसने गर्म होकर कहा,—"शाङ्गरव, तुम चुप रहो—मैं एक ही बातमें सारा झगड़ा निपटाये देता हूं, तुम्हारे वाग्जाल विस्तार करनेका कोई काम नहीं है।"

इसके बाद शकुन्तलाको सम्बोधन कर शारद्वत बोले,—"शकुन्तला, हम लोगोंको जो कुछ कहना था, वह हम लोग कह चुके, महाराजको जो कुछ कहना था, वे भी कह चुके। अब तुम्हें जो कुछ कहना हो वह कहो। ऐसा काम करो जिसमें उन्हें तुम्हारे ऊपर प्रतीति हो और हमारी बातोंका प्रमाण हो जाय।" यह सुन शकुन्तलाने बड़े धीमे स्वरसे कहा,—"भैया, जब वैसे अनुरागका यह परिणाम हुआ, तब मैं उन्हें पुरानी बातोंका क्या स्मरण दिलाऊं? उससे लाभ ही क्या होगा? तो भी अपना मुंह तो उज्ज्वल करना ही होगा, अतएव कहती हूं।" यह कह उसने राजाको सम्बोधन कर कहा,—"आर्यपुत्र" पर कहते ही कहते वह रुक गयी और कोई बात उसके मुंहसे नहीं निकली। उसने सोचा, कि "जब विवाहमें ही सन्देह हो रहा है, तब आर्यपुत्र, कहकर पुकारना कैसा? यह तो अनुचित बात होगी।" ऐसा सोच कुछ क्षण-भर विचार करनेके अनन्तर कहने लगी,—"महाराज, सुनिये, एक दिन तपोवनमें आकर मेरे ऊपर अपार दया और अत्यन्त प्रेम दिखला धर्मको साक्षी बना, नाना प्रकारकी शपथें और प्रतिज्ञायें करते हुए आपने मुझ-दासीको अपनाया था, परन्तु बड़े खेदकी बात है, कि इन कुछ महीनोंमें ही आप सारी बातें भूल गये और कहां तो आपने वैसा हार्दिक प्रेम दर्शाया था और कहां आज इस प्रकार सारा किया-धरा

मिट्टी कर रहे हैं ! यह आप जैसे धर्मात्मा राजाके लिये उचित नहीं है।"

यह सुन राजाको बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ और वे बिगड़ कर कहने लगे,—"जिस तरह बरसाती नदी अपने दोनों करारोंको ढहाती हुई अपने जलको पङ्किल बनाती है, उसी प्रकार तुम भी मुझे पतित और अपने आपको कलङ्कित करनेके लिये तैयार हो ! तुम्हारे साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। तुम अभी यहांसे चली जाओ !" राजाके मुंहसे ऐसी अपमानजनक बातें सुन, शकुन्तला कुछ देर तक तो चुप चाप खड़ी रही। तदनन्तर सोचते-सोचते क्रोधमें आकर कहने लगी,—"महाराज, आप क्यों ओछे लोगोंकी तरह बातें कर रहे हैं ? क्या आप मेरे पिताके आश्रममें जाने, वहां महीनों अवस्थान करने, मेरे साथ गन्धर्व-रीतिसे विवाह करने और मेरे भावी पुत्रको अपना युवराज तथा उत्तराधिकारी बनानेकी प्रतिज्ञा करनेकी बात सचमुच ही भूल गये। ठीक जानिये, जो आदमी मनमें कुछ और रखता है तथा मुंहसे कुछ और ही कहता है, वह सब तरहके अधर्म कर सकता है। देखिये अपनी आत्म-हत्या न कीजिये। आप यह समझते होंगे कि मैंने अकेलेमें विवाह किया है, कोई क्या जानता है ? परन्तु यह आपका कोरा भ्रम है। मेरे पिता योगबलसे सब कुछ जान लेंगे। पापी मनुष्य पाप करते समय सोचते हैं, कि हमारा यह कर्म कोई नहीं देखता, पर भण्डा फूटे बिना नहीं रहता। संसारकी आंखें बचाना सहज है, पर उस सर्वान्तर्यामीकी दृष्टिसे भला कोई कब बच सकता है ? अपना आत्मा तो सबका साक्षी है ? आत्मा सं-न्तुष्ट रहनेसे पाप नहीं व्यापते और आत्माके आगे अपराधी होनेसे कहीं छुटकारा नहीं हो सकता। महाराज, झूठ बोलनेवाला अपनी आत्माके आगे अपराधी होता है। चाहे वह संसारके अप-

मान और अपयशसे बच जाये, पर उसको आत्मा जो उसे भीतर ही भीतर जलाती रहती है, उस दण्डसे तो वह मुक्ति नहीं पा सकता। महाशय मैं स्वयं आपके पास चली आई हूं। इसीसे आप मेरा इतना अपमान कर रहे हैं। मैं सती और पतिव्रता हूं, ऐसी वैसी नारी नहीं हूं। आपने इस भरी सभामें एक ओछी नारीकी तरह मेरा अपमान किया है—सोच देखिये, छोटे मनुष्य भी अपनी विवाहिता पत्नीके साथ इस प्रकारका निन्दनीय आचरण नहीं करते। भार्या पुरुषका आधा शरीर, परम बन्धु, त्रिवर्ग-लाभ का मूल और संसार-सागरसे तारनेवाली नौका है। अतएव आप मुझे अपनी भार्याको इस प्रकार अपमानित न कीजिये। जिसके यहां परिणीता पत्नी नहीं, वह तो रोता फिरता है और आप अपनी ब्याही हुई स्त्रीको घरसे निकाल रहे हैं! यह क्या आप अच्छा काम कर रहे हैं? मरने पर भी केवल पतिव्रता स्त्रियां ही पुरुषोंका साथ देती हैं। अपने सतीत्वके बलसे वे जीवन-मरण सभी समय अपने स्वामी का कल्याण-साधन करती हैं। इसीलिये तो लोग विवाह करते हैं! आर्यजातिका विवाह पवित्र संस्कार, धर्मका बन्धन और स्वर्गा-पवर्गका दाता है। उस पवित्र-बन्धनको आप इस तरह कपट-कौशलसे छिन्न भिन्न कर अधर्म सञ्चय मत कीजिये। महाराज मनु-ष्यको कभी अपनी पत्नीका अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि जिस घरमें नारियां क्लेश पाती हैं, वह ध्वंश हो जाता है। किसी दिन भूलसे अपनी पत्नी कुछ अनुचित बात भी कह डाले, तो भी उसे क्षमा कर देना चाहिये—यही शास्त्र-आज्ञा और लोककी रीति है, क्योंकि प्रीति और धर्म, ये दोनों सुखके साधन हैं। विपत्तिके समय मनुष्य अपनी स्त्रीसे ही सब तरहके आराम पाता है। जैसे धूपसे व्याकुल पथिक वृक्षकी छाया पाकर प्रफुल्लित हो जाता है,

वैसे ही दुःखके दिनोंमें मनुष्य अपनी भार्याको ही देख कर प्रसन्न होता है। घड़ी भरके लिये सब दुःख भूल जाता है। अतएव आप समझ-बूझ कर अपनी पतिव्रता पत्नीके साथ व्यवहार कीजिये। और क्या कहूं? नहीं तो सतीके अपमानसे, विवाहिता पत्नीके निरादर करनेसे आपको लोकमें अपयश और परलोकमें पीड़ा ही प्राप्त होगी।"

शकुन्तलाकी सारी बातें सुन कर दुष्यन्तने कहा,—"तापस-कुमारी, तुम्हारे इस अनोखे सतीत्व और विचित्र पातिव्रत्यसे तो मेरी जान घबरा उठी है। कैसे दुःखकी बात है कि कण्वकी कन्या होकर तुम मन्द स्त्रियोंकी भांति मुझ पर-पुरुषसे ऐसी बातें कह रही हो! क्या तुम्हें लज्जा नहीं आती? तुम्हारी एक बातका भी मुझे विश्वास नहीं—मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहता, तुम अभी यहांसे चली जाओ।"

यह सुन शकुन्तलाने कहा,—"महाराज, आप मुझे कितनी निन्दनीय बना रहे हैं, मेरा कैसा अपमान कर रहे हैं—यह मैं ही जानती हूं। आप तो कोरी झूठी सची कह कर अपनी बात ऊपर कर रहे हैं। सच जानिये—महाराज, मेरा यह निरादर कभी निष्फल न जायेगा। मेरे साथ आपने जैसा दुर्व्यवहार किया है, कोई नीच आदमी भी अपनी स्त्रीके साथ वैसा बुरा व्यवहार नहीं करता। अच्छा, मैं आपको एक प्रमाण देना चाहती हूं, इच्छा हो तो इसे मानिये, नहीं तो जैसे इतना झूठ बोल गये, वैसे ही इसे भी हंसीमें उड़ा दीजिये! पर जहां तक मैं समझती हूं, आप इस प्रमाण का खण्डन करनेका साहस न कर सकेंगे। आप यदि मुझे पर-स्त्री समझ ग्रहण करनेमें सङ्कोच कर रहे हों और सचमुच आपको पिता कण्वके आश्रममें जाकर मेरे साथ विवाह करनेकी बात बिलकुल ही

न याद रही हो, तो लीजिये—मैं आपको आपकी ही दी हुई निशानी दिखलाती हूं । तब तो मानियेगा ?"

राजाने कहा,—"अच्छा दिखलाओ ।"

यह सुन शकुन्तला, अपने आंचलमें बंधी,—राजाकी दी हुई अंगूठी निकाल कर दिखलाने चली, पर जब उसने देखा कि अंगूठी तो आंचलसे खुल कर कहीं गिर पड़ी है, तब तो उसका चेहरा ही सूख गया ! रही-सही आशा भी चली गयी ! वह बड़ी व्याकुल होकर गौत्तमीका मुंह ताकने लगी ।

उसके मनका भाव जान कर गौत्तमीने कहा,—"बेटी, मालूम होता है कि गांठ ढीली पड़ जानेके कारण स्नान करते समय अंगूठी नदीमें गिर पड़ी । यह तो बड़ा बुरा हुआ ।"

शकुन्तलाकी यह व्याकुल दशा देख और गौत्तमीके साथ उसकी जो बातें हुईं, उन्हें सुन कर राजाने कहा,—"मैं जो सुना करता था कि स्त्रियां बातें बनानेमें बड़ी चतुर होती हैं, उसका आज मुझे हाथोंहाथ प्रमाण मिल गया । इसने क्या ही विचित्र बात बनायी थी ! पर झूठी बात कहांतक सच उतरे ?"

राजाकी यह बात शकुन्तलाके हृदयमें तीरकी तरह चुभ गयी, वह अधमरीसी हो गयी । उसने अंगूठीवाली बात इस तरह कट जाती देख कहा,—"अच्छा, महाराज, भाग्यदोषसे मेरी वह अंगूठी खो गयी , जो आपने मुझे दी थी । अतएव मैं इस प्रमाणसे आप को निरुत्तर न कर सकी, पर मेरी एक बात और सुन लीजिये । सम्भव है कि उसे सुन कर आपको पुरानी बातें याद आ जायें और आपका सन्देह दूर हो जाये ।" राजा बोले,—"अच्छा वह भी कह सुनाओ मैं सुननेके लिये तैयार हूं ! यदि किसी तरह तुम अपनी बातें प्रमाणित कर सको , तो तुम्हारे चेहरेकी लाली तो रह जायगी ? "

शकुन्तला कहने लगी,—"महाराज, अच्छी तरहसे याद कीजिये। एक दिन तपोवनमें रहते समय आप और मैं, दोनों जने नव-मालिकाके कुञ्जमें बैठे हुए थे—आपके हाथमें जलसे भरा हुआ कमलके पत्तेका दोना था। उसी समय मेरा बनावटी पुत्र, दीर्घापाङ्ग नामका मृग-छौना वहां आ पहुंचा। आपने उसे दोनेका वह पानी पिलानेके लिये कितना दुलार कर बुलाया, परन्तु वह आपको अपरिचित जान कर आपके पास न आया। फिर जब मैंने वह दोना अपने हाथमें ले लिया, तब वह आपसे आप मेरे पास आकर पानी पीने लगा। उस समय आपने दिल्लगी ही दिल्लगीमें मुझसे कहा था, "अपने सजातियोंका सब लोग विश्वास करते हैं। तुम दोनों जङ्गली हो, इसीसे वह तुम्हारे पास आया, पर मुझे नगर-निवासी जान, आते हुए डर गया।" राजाने तनिक मुस्कराते हुए कहा,—"आह! बातोंसे क्या ही मधु-वर्षण हो रहा है, कैसा अमृत टपक रहा है! यदि किसी कामी, बिलासी और विषयी मनुष्यसे ऐसी बातें कही जातीं, तो ये उस पर वशीकरण-यन्त्रकासा प्रभाव दिखलातीं!"

राजाकी यह ताने-भरी बात सुन गौत्तमीने किञ्चित कोप प्रकट करते हुए कहा,—"महाराज, आप कैसी विचित्र बातें कर रहे हैं? यह बालिका जन्मसे ही तपोवनमें लालित-पालित हुई है, छल कपट किस चिड़ियाका नाम है, सो यह नहीं जानती।"

राजाने कहा,—"वृद्धा तपस्विनी, क्षमा करना। चतुराई तो स्त्रियोंका स्वभाव है, वह किसीको उन्हें सिखलानी नहीं पड़ती। मनुष्योंकी तो बात ही छोड़ दीजिये, पशु-पक्षियोंमें भी नरकी अपेक्षा मादा बड़ी होशियार होती है। देखो कोई सिखलाता नहीं तो, भी कोयलें किस चतुराईके साथ अपने बच्चोंको अन्य पक्षियों द्वारा पाल-पोप लेती हैं!"

शकुन्तलाने रुष्ट हो कर कहा,—"जो जैसा होता है, वह दूसरों को भी वैसा ही समझता है। आप स्वयं कपटी, कुटिल, धूर्त्त और मिथ्यावादी हैं, इसीसे मुझे भी वैसा ही समझ रहे हैं।"

राजाने कहा,—"आज तक दुष्यन्तने कभी कोई काम छिपाकर नहीं किया। जो कुछ किया है, संसारको जना कर चौड़े मैदान किया है। यदि तुम सच कह रही हो तो बोलो, कोई तुम्हारा गवाह भी है, जिसके सामने मैंने तुम्हारा पाणिग्रहण किया था?"

शकुन्तलाने कहा,—"महाराज, आपने अपनी चुटीली बातोंसे मुझे बड़ी दुश्चरित्रा प्रमाणित कर दिया है। हाय! विश्वामित्रकी सन्तान, मेनकाकी कन्याके भाग्यमें क्या यही लिखा था? मुझे जन्मते ही मां-बापने छोड़ा और जिन्हें मैंने अपने लोक-परलोकका साथी समझा था, आज वे भी मुझे मंझधारमें छोड़ रहे हैं। पुरु-वंश वालोंको अति उदार समझ कर मैंने जिस मधु-मुख और पाषाण हृदय-पुरुषके हाथोंमें अपनेको जन्म-भरके लिये सौंप दिया था, वे इस प्रकारका आचरण करेंगे, इसका मुझे स्वप्नमें भी भरोसा नहीं था। परन्तु विधिका लिखा कौन मेट सकता है? निष्ठुर! तुमने मुझे कहीं की भी न रखा!"

यह कहती हुई शकुन्तला, आंचलसे मुंह ढांप सिसक-सिसक कर रोने लगी। इस तरह रङ्गमें भङ्ग होते और मामलेको बिचित्र रूप धारण करते देख, शार्ङ्गरवने कहा,—"आगा-पीछा सोचे बिना जो काम किया जाता है, उसका अन्तमें यही परिणाम होता है। इसीसे सभी काम विशेषतः वे काम जो निर्जनमें किये जाते हैं, खूब जांच-पूछ कर करने चाहिये। परस्परका शील-स्वभाव जाने बिना जो प्रीति की जाती है, वह थोड़े ही कालमें वैरके रूपमें बदल जाती है।"

यह सुन, राजा दुष्यन्तने कहा,—"महर्षि–कुमार, इस स्त्रीकी चिकनी-चुपड़ी बातों और दिखाऊ रोने-धोनेके धोखेमें आकर व्यर्थ ही मेरा तिरस्कार न करो, दुष्यन्तके शील-स्वभावको सारा संसार जानता है।" यह सुन अत्यन्त क्रोधित होकर शार्ङ्गरवने कहा,—"बस, चुप रहो! देख लिया तुम्हारा शील-स्वभाव! भला, इस बालिकाकी बातको जो जन्मकी भोली है और जिसने कभी छल-कपटका नाम भी नहीं जाना, यहां कौन मानता है? यहां तो वही साहूकार हैं, जो जन्मसे धूर्त्तता सीखते हैं तथा जो छल-कपटको गुण और सीखने योग्य विद्या मानते हैं।

यह सुन राजाने कहा,—"ठीक है। मैं यह बात मानता हूं कि राजा लोग धूर्त्तता करनेमें पाप नहीं समझते, क्योंकि अनेक समय उनकी नीति इसके बिना सफल नहीं होती। पर आप ही कहिये, इस बेचारीको धोखा देनेमें मेरा क्या लाभ है!" कोपसे थर–थर कांपते हुए शार्ङ्गरवने कहा,—"सर्वनाश! और क्या?" राजाने हंस कर कहा,—"पुरु-वंशियोंका कभी सर्वनाश नहीं हो सकता!"

इस प्रकार राजा और शार्ङ्गरवमें वाद-विवाद बढ़ते देख, शारद्वतने कहा,—"शार्ङ्गरव, चुप रहो! हमारा काम हो गया। गुरुकी आज्ञासे हम शकुन्तलाको उसके पतिके पास ले आये। अब चलो हम लोग लौट चलें।" यह कह राजाकी ओर फिर कर उसने कहा, "महाराज, यह आपकी पत्नी है—आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा इसके साथ व्यवहार करें। जी चाहे घरमें रखें या निकाल बाहर कर दें! पत्नीके ऊपर पतिका पूरा पूरा प्रभुत्व है, वह जैसा चाहे, वैसा उसके साथ व्यवहार कर सकता है। हम लोगोंको अब कुछ कहना-सुनना नहीं है।" यह कह शार्ङ्गरव, शारद्वत और गौतमी, तीनों चलनेके लिये तैयार हो गये!

उन्हें जाते देख, शकुन्तलाने अश्रु-पूर्ण नेत्र और कातर-क्रन्दन कर कहा,—"पतिने जो व्यवहार किया, वह तो किया ही, अब क्या तुम लोग भी मुझे अकेलीको छोड़ कर चले जाओगे ? फिर मेरी क्या गति होगी ?" यह कह वह भी उनके पीछे-पीछे चली। उसे आती देख गौत्तमीने कहा,—"बेटा-शार्ङ्गरव, देख शकुन्तला रोती हुई हमारे पीछे-पीछे चली आ रही हैं। बेचारी दुखियाको निर्मोही पतिने छोड़ दिया, इसीसे वह हमारे पीछे आ रही है। क्या करे ? कहां जाये ? उसे हमी ही क्यों नहीं अपने साथ लिये चलें ?"

इसी समय शकुन्तला पास आ गयी। उसे देखते ही शार्ङ्गरवने झुंझलाकर कहा,—"री अभागिनी ! पतिसे दुतकारी जाकर अब क्या तू स्वतन्त्र होने चली है ?"

यह वज्रसे भी कठोर वचन सुन, शकुन्तलाके पांव भूमिमें गड़से गये। वह मारे आत्म-ग्लानिके थर थर कांपने और रोने लगी।

यह देख शार्ङ्गरवने कहा,—"शकुन्तला, देख, यदि राजाकी कही हुई बातें सच हों, तो तू बड़ी पापिनी, कुल-कलङ्किनी और दुराचारिणी है ! तेरा ऐसा मुंह नहीं, जो बापके घर जा सके। पर यदि तू सच्ची और राजा झूठा है, यदि तूने काय-वचन-मनसे दुष्यन्तके सिवा हृदयमें और किसीको जगह नहीं दी है, तो पतिके घरमें दासी बन कर रहना भी तेरे लिये लाख दर्जे अच्छा है। यदि तू पतिव्रता है, तो सौ-सौ अपमान सह कर भी यहीं रह। कलङ्क लगाकर पिताको मुंह दिखलाने मत जा !" यह कह, वे चल दिये। शकुन्तला मन ही मन रोती-झींकती अपनी भाग्य-रेखाको कोसती हुई चुपचाप खड़ी रही।

तपस्वियोंको जाते देख, राजाने कहा,—"क्यों महाराज, आप लोग इस स्त्रीको झूठी आशा देकर यहां क्यों छोड़े जा रहे हैं ?

देखिये, चन्द्रमा कुमुदिनीको ही देख कर प्रसन्न होता है, सूर्य कमलिनीको ही विकसित करता है, इसी तरह जितेन्द्रिय पुरुष भी अपनी स्त्रीसे ही सन्तुष्ट होते हैं, परायी नारीसे दूर भागते हैं। इसे यहां रहने देनेमें मुझे आपत्ति है।"

यह सुन, शार्ङ्गरवने कहा,—"महाराज, आप इसे परायी स्त्री समझ कर धर्मके भयसे ग्रहण करते हुए सकुचाते हैं, यह तो बड़ी अच्छी बात है, किन्तु यह भी असम्भव नहीं है कि आप सारी बातें भूल रहे हों!"

यह सुन, राजाने पास ही बैठे हुए पुरोहितसे कहा,—"राम जाने, मैं ही बातें भूल रहा हूं—या यही झूठ बोल रही हो। अतएव पुरोहितजी महाराज, आप ही बतलाइये, कि मैं क्या करूं?"

राजपुरोहितने कहा,—"अच्छा महाराज, जब तक पुत्र होता है, तब तक मैं इसे अपने घरमें रख लेता हूं। बड़े बड़े ज्योतिषियोंने कह रखा है कि आपका पहला पुत्र चक्रवर्ती राजाके लक्षणोंसे युक्त होगा। सो यदि इस स्त्रीका पुत्र वैसा ही हुआ तब तो ठीक है, नहीं तो इसे कह दिया जायगा कि तुम अपने पिताके पास लौट जाओ।"

राजा दुष्यन्तने राजपुरोहितकी बात स्वीकार करली—और पुरोहित शकुन्तलाको अपने घरकी ओर लेकर चला। इधर कण्वमुनिके दोनों शिष्य और गौतमी भी आश्रमको लौट गये।

+ + + +

राजपुरोहित अपने घरकी ओर चले जा रहे थे—उनके पीछे पीछे शकुन्तला जा रही थी। वह चल रही थी, परन्तु उसके शरीर का रक्त-प्रवाह बन्द हो रहा था। वह मन ही मनमें कह रही थी कि इससे तो मैं मर जाती तो अच्छा था। परन्तु देखती हूं कि प्राण भी नहीं निकलते।

इसी प्रकारसे जब राजपुरोहित अप्सरा तीर्थ पर शकुन्तला सहित पहुंचे, तो शकुन्तला खड़ी हो गयी ! पुरोहित भी ठहर गये। शकु-न्तला जोर जोरसे शिरमें हाथ मार कर रोती हुई बोली,—"महामुनि-विश्वामित्रके औरस और अप्सरा-मेनकाके गर्भसे उत्पन्न तथा महा-तपस्वी कण्व द्वारा परिपालिता और इस ससागरा पृथ्वीके एकछत्र सम्राट्की विवाहिता-पत्नी, आज पतिसे तिरस्कृत होकर एक ब्राह्मण के घर आश्रय पाने जा रही है ! मां, वसुन्धरे, मुझे स्थान दे, जिसमें मैं समा जाऊं और इस कलङ्कित-जीवनको लेकर एक क्षण भर भी मैं यहां नहीं रहना चाहती ! हे माता, तू ही अपनी पुत्रीके अपमान को देख कर मेरी रक्षा कर !" जिस समय शकुन्तला इस प्रकारसे रुदन कर रही थी, उसी समय सहसा एक ज्योतिर्मयी अप्सरा-मूर्ति आविर्भूत हुई, और शकुन्तलाको गलेसे लगाकर आकाश लोककी ओर जाती हुई दृष्टिगोचर हुई ! राजपुरोहित इस दृश्यको देखकर अवाक् रह गये। उन्होंने समस्त वृत्तान्त राजाके पास जाकर कह सुनाया।

राजा शकुन्तलाके चले जानेपर उसके सम्बन्धमें अनेक प्रकार की बातें सोच रहे थे। सहसा राजपुरोहितसे शकुन्तलाके अन्तर्हित हो जानेकी बात सुनकर, स्तब्ध-भीत एवं अवाक् हो गये।

——:*:——

एकादश-परिच्छेद ।

स्मृति और पश्चात्ताप ।

राजदर्बारमें जाते समय रास्तेमें नदीपर स्नान करते करते शकुन्तलाके आञ्चलसे राजाकी चिन्ह-स्वरूप दी हुई अंगूठी, खुलकर गिर पड़ी थी। शकुन्तलाने स्नान करनेके पश्चात् इस बातका ख्याल भी नहीं किया और स्नानादिसे निवृत्त होकर अपने साथियोंके साथ चल दी।

उधर जलमें अंगूठीके गिरते ही आटेकी गोली समझ कर एक मछली उसे निगल गई। अकस्मात् उसी समय एक मछुआ जाल लेकर मछली पकड़ रहा था, वह मछली उसके जालमें फंस गई। पकड़ी हुई मछलियोंको लेकर मछुआ अपने घर चला आया। दैवेच्छासे उसने जब कुछ मछलियां खानेके लिये हांडीमें रख कर पकानी आरम्भ कीं, तो सहसा एक मछलीके पेटसे वह अंगूठी निकल आई! मछुएने उसे बहुमूल्य-वस्तु समझ कर रख लिया और वह बड़ा प्रसन्न हुआ। शामको अपने कामसे निवृत्त होकर मछुआ उस अंगूठीको बेचनेके लिये बाजारमें एक जौहरीकी दुकान पर गया। जौहरीने उस अंगूठीको देखा। उस पर महाराज दुष्यन्तका नाम खुदा हुआ था। जौहरीने समझा यह चोर है, कहींसे किसी प्रकारसे उसने महाराजकी अंगूठी चुराई है। इस प्रकारसे विचार करके जौहरीने मछुएको तो वहीं ठहरा लिया और स्वयं राजभक्ति-प्रदर्शित करनेके लिये नगर-रक्षकको जाकर अंगूठीकी सूचना दी। नगर-रक्षकने

जौहरीकी दुकान पर आकर मछुएको गिरफ्तार कर लिया और अंगूठी राजा दुष्यन्तके पास भेजकर मछुएकी गिरफ्तारीकी सूचना दी ।

यथा समय राजाने मछुएको बुलाया और उससे पूछा कि उसने वह अंगूठी कहांसे पाई । मछुएने समस्त घटनाका उल्लेख कर कहा कि,—"मैं मछली पकड़ने नदी पर गया था, वहांसे जालमें और मछलियोंके साथ वह मछली भी आ गई, जिसके पेटमें यह अंगूठी निकली । जब मैंने उस मछलीको पकाया, तो सहसा उसके पेटमेंसे वह अंगूठी भी निकल पड़ी, जिसे मूल्यवान समझ कर मैं जौहरीकी दूकान पर बेचने आया । वहां मुझे गिरफ्तार कर लिया गया ।" मछुएके मुंहसे आद्योपान्त समस्त घटना सुनकर राजाने मछुएको अंगूठीसे भी अधिकका मूल्य दिलवा कर छुड़वा दिया और स्वयं अंगूठीके सम्बन्धमें आकाश पाताल सोचने लगे ।

दुर्वासा ऋषिने शकुन्तलाको राजा दुष्यन्तके स्मरणमें डूबे देख कर शाप दिया था—कि 'तू अतिथियोंका अपमान करनेवाली है । तू जिसकी चिन्तामें इस प्रकारसे तन्मय है, वह तुझे भूल जायगा और तेरे बार बार स्मरण दिलाने पर भी याद न करेगा !' परन्तु शकुन्तलाकी सखियोंने ऋषिसे अनुनय विनय कर यह मनवा लिया था—कि अच्छा शाप तो लौट नहीं सकता, परन्तु शकुन्तला उस आदमीकी दी हुई चिन्ह-स्वरूप कोई वस्तु उसे दिखा देगी, तो उसकी स्मृति जाग उठेगी ।—सुतरां उसी शापके कारण राजा दुष्यन्त शकुन्तलाके उपस्थित होनेपर उसे भूल गये । उसके बार बार स्मरण कराने पर भी राजाकी स्मृति जाग्रत न हुई । राजाने जिस अपमानके साथ शकुन्तलाको वहांसे चली जानेका आदेश दिया—और वह राजपुरोहितके साथ अप्सरा-तीर्थ पर जिस प्रकारसे एक दिव्य ज्योतिके प्रकट होनेपर उसके साथ आकाशलोकको चली गई, उसका

उल्लेख इससे पहले परिच्छेदमें हो चुका है। सुतरां इस चिन्ह-स्वरूप अंगूठीके देखने मात्रसे ही राजा दुष्यन्तकी स्मृति जाग्रत हो उठी ! समस्त घटित-पूर्व घटना आंखोंके सामने नाचने लगी । राजा यह भी समझ गये कि स्नान करते समय शकुन्तलाके आञ्चलसे ही यह अंगूठी नदीमें गिरी और मछलीने इसे निगल लिया—और मछुए द्वारा जौहरीके पास आई—तथा इस प्रकारसे यहां पहुंची। परन्तु 'अब बरसे का होत है, जब चिड़ियां चुगई खेत'—शकुन्तला को बड़े अपमानके साथ निकाल दिया। वह स्वर्गीय-दिव्याम्बरधरा—स्वर्गसे आई थी—अपमान न सहकर स्वर्गको ही चली गई। अब पछतानेसे क्या हो सकता है।

राजाकी पूर्व स्मृति जाग उठी। वे आप ही आप अपने कृत्य पर पछताने लगे। शकुन्तलाके शोक और मोहने उनके मतिष्कको खराब कर दिया। एक दिन उनके मित्र माढव्य उनके पास बैठे थे। उन्होंने राजाको अत्यन्त शोक-सन्तप्त देख बहुत समझाया, परन्तु राजाका शोक दूर न हुआ।

तपोवनसे आकर राजाने शकुन्तलाका एक चित्र अङ्कित किया था। आज अधिक मन उदास देख एक चतुरिका उस चित्रको वहां उठा लाई। माढव्य चित्रको देख कर राजाके हस्त-कौशलकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगा। राजाने कहा,—"मित्र, तुमने शकुन्तलाके साक्षात् दर्शन नहीं किये, नहीं तो तुम मेरी इस कारीगरीकी कभी प्रशंसा न करते। उसके असली रूप-माधुर्यकी छटाका तो इसमें एक कण-मात्र भी अंश नहीं आया।" राजा इस प्रकारसे गुण-कीर्तन करते हुए उस चित्रको अनेक रङ्गोंसे और भी मन लगाकर ऐसे अंकित करने लगे, जैसे चेतन-शकुन्तलाके जड़-प्रतिबिम्बकी पूजा कर रहे हों।

मित्र माढव्यने राजाको बहुत समझाया बुझाया, परन्तु राजाका शोक किसी प्रकारसे भी दूर न हुआ । इसी प्रकारसे एक दिन राजा और माढव्य बैठे शकुन्तलाका गुण-कीर्त्तन कर रहे थे । इसी समय द्वारपालने बाहरसे आकर मन्त्रीका एक पत्र राजाको दिया । उस पत्रमें लिखा था कि उनके राज्यका धनमित्र नामका एक सेठ जो समुद्र द्वारा व्यापारका काम करता था, समुद्रमें जहाज सहित डूब गया । उसकी बहुतसी धन सम्पत्ति है, स्त्रियोंके सिवा कोई उत्तराधिकारी नहीं, सो राजनियमके अनुसार उसकी धन-सम्पत्ति सब राज्यके कोषमें मिला ली जाय । राजा इस पत्रको पढ़कर अत्यन्त दुःखी हुए और अपने मित्र माढव्यसे बोले कि,—"मित्र, एक दिन मेरी भी बिना उत्तराधिकारीके यही गति होगी ।" इस प्रकारसे कहकर राजा जोर जोरसे रुदन करने लगे । माढव्यके समझाने बुझाने पर राजा जब जरा संयत हुए तो राजाने द्वारपाल द्वारा मन्त्रीसे पूछा कि—उस सेठकी कोई स्त्री गर्भवती भी है, या नहीं ? मन्त्रीके यह कहनेपर कि हां—काशीवाली स्त्री गर्भवती है,—राजाने आज्ञा दी कि उस गर्भवती स्त्रीसे जो सन्तान होगी, वही धनमित्र सेठकी धन सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी होगी । द्वारपालने राजाकी आज्ञा मन्त्रीको जा सुनाई और राजा मित्र माढव्यके साथ शकुन्तलाकी चर्चा करने लगे ।



द्वादश-परिच्छेद।



मधुर-मिलन।

—o:o—

इसी प्रकारसे बरसों व्यतीत हो गये, परन्तु शकुन्तलाका कोई संवाद न मिला। राजा शकुन्तलाके वियोगकी विरहाग्निकी ज्वाला से सन्तप्त होकर नीरस-जीवन व्यतीत करने लगे। इसी प्रकारसे एक दिन राजा दुष्यन्त एकान्त स्थानमें बैठे कुछ सोच रहे थे। इसी समय देवराज इन्द्रका सारथि-मातलि, देव-रथ सहित उपस्थित हुआ। देवराज इन्द्रका सारथि समझ, राजाने उसका यथोचित आदर-सम्मान कर उसके आगमनका कारण पूछा। मातलिने कहा,—"महाराज, कालनेमिकी सन्तानें, स्वर्गमें इस समय बड़ा उपद्रव कर रही हैं, स्वयं देवराज इन्द्र भी हैरान हैं। देवराज आपके परममित्र हैं। उन्होंने अपनी सहायताके लिये आपको बुलाया है।"

राजा दुष्यन्तने इस सम्मान-सूचक संवादको पाकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और मित्र माढव्य द्वारा मन्त्रीको राजकाज सम्भालनेकी आज्ञा देकर, रथ पर सवार हो देवराज-सारथि-मातलिके साथ देवलोकको चल पड़े।

यथासमय राजा देवलोकमें पहुंच गये और वहां जाकर उन्होंने अपने अपूर्व बाहुबलसे कालनेमिकी सन्तानोंका दमन किया। देवराज इन्द्रने राजा दुष्यन्तका बड़ा सम्मान किया और उनको अपने साथ सिंहासनपर बैठाकर आप्यायित किया। राजा इस सद्-व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसी प्रकारसे देवलोकमें रहते

बहुत दिन व्यतीत हो गये। कुछ दिनके बाद उन्होंने मर्त्यलोकमें आनेका विचार किया। मातलि-सारथि रथ लेकर तैयार हो गया। राजाने मातलिसे देवराज द्वारा प्राप्त, सम्मान-सत्कारकी बड़ी प्रशंसा की। मातलिने राजाकी बड़ाई कर उन्हें सम्मानके ही योग्य बताया।

उस दिन बातचीत करते हुए राजा दुष्यन्त मातलिके साथ बहुत दूर तक आगे चले गये। सामने पूर्वसे पश्चिम तक फैला हुआ एक स्वर्णमय विशाल पर्वत दृष्टिगोचर हो रहा था, उसे देख कर मातलिसे राजाने उसका नाम पूछा। उत्तरमें मातलिने कहा,—"महाराज, उस पर्वतका नाम देव-कूट पर्वत है। वहां किन्नर और किन्नरियां तथा अप्सरायें रहती हैं। वह तपस्वियोंकी तपस्याका सर्वप्रधान—स्थान है। उसी पर्वतपर महामुनि कश्यप तपस्या करते हैं।"

राजाने उत्तरमें मातलिसे हेम-कूट पर्वत—देखनेकी इच्छा प्रकट की और कहा कि,—"महामुनि कश्यपके बिना दर्शन किये देवलोकसे चले जाना बड़ी भारी गलती होगी, सो हे सारथि, एकबार हेमकूट पर्वतकी ओर रथको ले चलो।"

सारथिने रथको आगे बढ़ाया और हेम-कूट पर्वतके पास पहुंच गये। राजाने मातलिसे पूछा कि,—"महामुनि कश्यप, इस पर्वतके किस भागमें तपस्या करते हैं?" सारथिने कहा,—"देखिये महाराज, वह सामने कश्यप मुनिका आश्रम दीख रहा है। चलिये हम वहीं चल रहे हैं।" थोड़ी दूर आगे चलकर आश्रम आ गया। पास ही एक ऋषि-कुमार खड़ा था। राजाने उससे पूछा कि,—"क्योंजी, महामुनि कश्यप इस समय क्या कर रहे हैं?" उत्तरमें ऋषिकुमारने कहा,—"वे इस समय अपनी पत्नी अदिति और अन्यान्य ऋषि-पत्नियोंको पातिव्रत-धर्मका उपदेश दे रहे हैं।" यह सुनकर राजा

वहीं ठहर गये और सारथि मातलि उनके आगमनकी सूचना देने आश्रममें चला गया।

इसी समय न जाने क्यों राजा दुष्यन्तकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। राजा मन ही मन अपनेको धिक्कारने लगे,—कि साक्षात देवी-स्वरूपिणी पत्नीको अपमान पूर्वक परित्याग कर अब भी मेरे लिये यह शकुन क्यों हो रहे हैं! इसी समय तनिक आगेकी ओर बढ़कर क्या देखते हैं कि एक बालक, एक सिंह-शिशुको तङ्ग कर रहा है। कभी उसका मुंह खोलकर उसके दांत गिनता है, कभी उसके ऊपर बैठ जाता है! परन्तु वह बिल्लीके बच्चेकी तरहसे चुपचाप उसके समस्त उपद्रव सहन कर रहा है। इस अद्भुत काण्डको देख कर राजा और भी आगे बढ़कर उस बच्चेकी सिंह-क्रीड़ाको देखने लगे। परन्तु राजाने जब उस बालकको एकबार ध्यानसे देखा, तो न जाने क्यों अपत्य स्नेहसे उनका हृदय पुलकित हो उठा! राजा इसका कारण सोचने लगे, परन्तु उनकी समझमें इसका कुछ भी रहस्य न आया।

इधर उस बालकने उस सिंह-शिशुपर और भी अत्याचार करना आरम्भ किया। बालकके इस प्रकारके अत्याचारको देख पास ही खड़ी तपस्विनियां बोलीं,—"बेटा, छोड़ दो, इन वनके सारे पशुओं-को हमलोग अपने बच्चोंकी नाईं समझती हैं। फिर तू क्यों उसे छेड़ रहा है? उसे दुःख मत दे। हमारा कहा मान, उसे जाने दे। वह अपनी मांके पास चला जाये। यदि तू नहीं छोड़ेगा, तो उसकी मां तुझे हैरान करेगी।"

परन्तु उनके कहे-सुनेका कुछ प्रभाव न हुआ, बालक तनिक भी न डरा। वह और भी उस सिंह-शिशुको तङ्ग करने लगा। तब एक तपस्विनीने कहा,—"बेटा, इसे छोड़ दे, मैं तुझे बड़ा बढ़िया खिलौना

ला दूंगी।" बालकने कहा,—"पहले खिलौना ला दो, तो इसे छोड़ूंगा, नहीं तो इसीसे खेलूंगा।"

दूसरी तपस्विनी,—"सखी सुव्रता, यह बालक बड़ा हठी है। यह नहीं मानेगा। जाकर कुटीमेंसे वह मट्टीका मोर ले आओ, जो ऋषि-कुमार शङ्करके खेलनेके लिये रखा हुआ है।"

"अच्छा, मैं अभी लाये देती हूं"—कहती हुई सुव्रता कुटीकी ओर चली गई और वह बालक फिर उसी तरह उस सिंह-शिशुको लेकर खिलवाड़ करने लगा।

राजा, दूरसे ही एक वृक्षकी आड़में खड़े होकर उन लोगोंकी ये सारी बातें सुनते और कौतूहल-भरी दृष्टिसे उस बालककी ओर देख रहे थे। इसी समय बालकने एक हाथ पसारकर खिलौना मांगा, बोला,—"क्यों, लायी खिलौना ला दे। नहीं तो मैं इसे कभी न छोड़ूंगा।"

उस बालकका हाथ देखते ही राजाके मनमें जो स्नेह उत्पन्न हुआ था, वह क्रमशः गाढ़ होने लगा। वे मनही मन कहने लगे—"इस लड़केके हाथमें तो चक्रवर्तीके सब लक्षण वर्तमान हैं! यह कैसे आश्चर्यकी बात है! अहा, न जाने क्यों मेरे जीमें बार-बार यही आता है, कि इस लड़केको गोदमें उठा लूं! क्यों मेरा मन ऐसा हो रहा है? इससे पहले तो किसी लड़केको देखकर मेरे मनमें इतना स्नेह नहीं पैदा हुआ था! अहा! मैं तो इसे देखकर ही इतना स्नेहसे अधीर हो रहा हूं, फिर जिसका यह पुत्र है, वह जिस समय इसे गोदमें लेकर इसका मुंह चूमता होगा, इसके हंसनेपर इसके आधे निकले हुए दांतोंको देखता और इसकी मृदु, मधुर और तोतली बातें सुनता होगा, उस समय उस पुण्यवान व्यक्तिको न जाने कैसा अकथनीय आनन्द प्राप्त होता होगा! हाय, मैं कैसा अभागा हूं! संसारमें

आकर जिसने पुत्रका फल नहीं पाया, उसका जीवन व्यर्थ है। मैं अभागा इस सुखसे बिलकुल ही वञ्चित हूं! मैं कभी अपने पुत्रको गोदमें ले खिला सकूंगा, उसके मुंहके छोटे छोटे आधे निकले हुए दांतों को देखता हुआ, उसकी मीठी-मीठी तोतली बातें सुन सकूंगा—यह आशा मुझे नहीं है!"

खिलौनेके आनेमें देर होती देख, बालकने क्रुद्ध होकर कहा,—"अच्छा, तुम लोगोंने अबतक मुझे खिलौना नहीं दिया, अब देखो मैं इस सिंहके बच्चेको कितना तङ्ग करता हूं!" यह कह कर वह उस सिंह-शिशुको अत्यन्त बल-पूर्वक खींचने लगा।

तपस्विनीने बड़ी चेष्टा की, कि उससे सिंह-शिशुको छुड़ा दे, पर न छुड़ा सकी। तब उसने बहुत झुंझलाकर कहा,—"क्या तू नहीं मानेगा? अरे कोई ऋषिकुमार यहां है? अभी इस लड़केसे सिंह-शिशुको छुड़ा दे?" यह कह, उसने ज्योंही इधर-उधर दृष्टि फेरी, त्योंही राजा दुष्यन्तको देख कर बोल उठी,—"परदेशी, आओ कृपाकर इस हठीले बालकसे इस सिंहके बच्चेको छीन दो।"

"अच्छा" कह कर राजा और भी पास आ गये तथा उस बालकको स्नेह-भरी दृष्टिसे देखते हुए कहने लगे,—"ऋषि-कुमार, तुमने इस प्रकार तपोवनके विरुद्ध आचरण करना क्योंकर सीख लिया? तपस्वीके बालकके लिये तो यह उचित नहीं है। मलय-गिरि से लिपटे हुए सर्पका विष जैसे दूर नहीं होता, वैसे तपोवनमें रह कर भी तुम इतने दुष्ट क्यों हो? क्या तुम अपने कुलको लज्जित करना चाहते हो?"

यह सुन, उस तपस्विनीने कहा,—"महाराज, आप जिसे ऋषि-कुमार समझ रहे हैं, वह वास्तवमें ऋषि-बालक नहीं है।"

राजाने कहा,—"इसका आकार-प्रकार और यह साहस देखकर

तो मुझे भी ऐसा ही मालूम होता था, परन्तु तपोवनमें ऋषि-बालकके सिवा और किसका बालक होगा? यही सोचकर मैंने वैसा कहा था।" यह कह, राजाने उस बालकका हाथ पकड़ कर उस सिंहके बच्चेको छुड़ा दिया। अपने हाथमें उसका हाथ लेते ही उस स्पर्श-सुखके अनुभवसे राजाके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये और वे मन ही मन सोचने लगे,—"अहा! जब इस लड़केका शरीर-स्पर्श करते हुए मुझे इतना हर्ष हो रहा है, तब जिसका यह बालक है उसे कितना सुख होता होगा, यह कहा नहीं जा सकता।"

बालक बड़ा हठी और नट-खट था, तो भी उसने राजाकी एक ही बात पर सिंहके बच्चेको छोड़ दिया, यह देख तपस्विनीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उस समय तो उसके विस्मयका कोई ठिकाना ही न रहा, जब उसने उस बटोहीका चेहरा उस बालकके चेहरेसे बहुत कुछ मिलता जुलता देखा! वह भौंचकसी होकर परदेशीका मुंह देखने लगी। राजाने पूछा,—"तपस्विनी, जब यह बालक ऋषि-कुमार नहीं है, तब किस क्षत्रिय वंशका दीपक है, यह तो बतलाओ?" तपस्विनी बोली,—"बटोही, यह बालक पुरु-वंशीय है।"

यह सुन राजाने मन ही मन कहा,—"इसीसे तो मेरा-इसका चेहरा-मोहरा मिल रहा है। अहा! मैंने जिस वंशमें जन्म लिया है, यह बालक भी उसी पवित्र वंशमें उत्पन्न हुआ है। पुरु-वंशियोंकी यह रीति है, कि वे पहले तो सांसारिक सुखोंको भली भांति भोगते हैं, पीछे वाणप्रस्थ आश्रमका अवलम्बन कर, जितेन्द्रिय तपस्वियोंकी तरह वृक्षोंके नीचे कुटी बना कर रहते हैं। अतएव मालूम होता है, कि यहां कोई पुरुवंशीय महापुरुष वाणप्रस्थ अवलम्बन कर वास करते हैं। परन्तु मुझे आश्चर्य तो इस बातका है, कि इस बालकके चरित्र देवताओंकेसे हैं, फिर यह मनुष्यके वीर्यसे क्योंकर उत्पन्न

हो सकता है ?" यह सोचकर राजाने तपस्विनीसे पूछा,—"यह देव-भूमि तो मनुष्योंके रहनेका स्थान नहीं है, फिर यह बालक यहां क्यों कर चला आया ? तपस्विनीने कहा,—"इसकी माताका सम्बन्ध अप्सरा कुलसे होनेके कारण उन्होंने यहीं सन्तान-प्रसवका कार्य किया था।"

अब तो राजाके मनमें जो सन्देह पैदा हो गया था, वह धीरे-धीरे निश्चयके रूपमें बदलने लगा। तो भी वे पूर्ण रूपसे सन्देह दूर करनेके अभिप्रायसे बोले,—"यह बालक पुरु-वंशके किस राजाका पुत्र है, यह तो बतलाओ ?"

यह सुन, तपस्विनीने कहा,—"महाशय, क्षमा कीजिये, उस धर्म-पत्नीका त्याग करनेवाले पापीका नाम मुझसे न पूछिये !"

राजाने मन ही मन सोचा,—"यह पाप तो मैंने ही किया है ! तो क्या यह इशारा मेरी ही तरफ है ? अच्छा, इसकी माताका नाम तो पूछूं ? इससे सारे सन्देह मिट जायेंगे, परन्तु पर-स्त्रीके सम्बन्धमें कोई बात क्यों कर पूछूं ? जब मैंने मोहान्ध होकर अपने हाथों अपनी आशा-लताको जड़से उखाड़ फेंका है, तब उसको फिर से हरा करनेकी चेष्टा करना व्यर्थ है। कहीं अन्तमें दुःख ही दुःख हाथ न आये। अतएव इस बातको ही जाने देना चाहिये।"

राजा अपने मन ही मनमें इसी प्रकारसे सोच-विचार रहे थे, इसी समय पहिली तपस्विनी कुटीसे मट्टीका एक मोर लिये हुए आ पहुंची और बोली,—"बेटा, यह 'शकुन्त-लावण्य' देखो।"

तपस्विनीके इस वाक्यमें 'शकुन्त' शब्द सुनकर बालकने पूछा,—"क्यों मेरी मां कहां है ?" तपस्विनी बोली,—"नहीं,—अरी, तेरी मां नहीं आयी। मैं तो तुझसे इस पक्षीकी सुन्दरता देखनेको कह रही हूं।"



वीर-बालक भरतकी सिंह-क्रीड़ा।

यह कह, उसने राजासे कहा,—"महाशय, यह बालक जन्मसे ही अपनी मांके सिवा और किसी अपने सगे-सम्बन्धीको नहीं जानता, सदा अपनी मांके ही पास रहता आया है, इसीलिये बड़ा मातृ-वत्सल है। मैंने जो 'शकुन्त-लावण्य' शब्द कहा, तो इसे झटपट अपनी माताकी सुध आ गयी, क्योंकि उसका नाम भी 'शकुन्तला' है।"

अब तो राजाके मनमें निश्चय और सन्देहका बड़ा ही भयङ्कर द्वन्द-युद्ध होने लगा। उन्होंने सोचा,—"यह लो, इसकी मांका नाम भी 'शकुन्तला' है! यह तो देखता हूं, कि धीरे-धीरे सभी बातें मेरे ही ऊपर घट रही हैं। मालूम होता है, मेरी आशा पूरी हुआ चाहती है! परन्तु नहीं, क्यों व्यर्थकी मृग-तृष्णामें पड़ूं? यह सब सोचना बेकार है। एक नामके सैकड़ों आदमी होते हैं।"

जिस समय राजाने शकुन्तलाको सामान्य स्त्रीकी भांति अपमानित कर अपने यहांसे दूर कर दिया था और उनके पुरोहित उसे लिये हुए घर जा रहे थे, उसी समय रास्तेमें, अप्सरा-तीर्थके समीप पहुंच कर शकुन्तला बड़े जोरसे रो उठी थी। उस समय उसकी माता-मेनका, अप्सरा-तीर्थके स्वच्छ-शीतल जलमें विहार कर रही थी। उसके कानोंमें अपनी प्यारी पुत्रीका करुण क्रन्दन सुनाई दिया। रक्तने अपना प्रभाव दिखाया, मेनकाका मन चञ्चल हो उठा और अपनी प्यारी कन्याकी रुलाईने उसे पगलीसी बना दिया। वह झटपट जलसे बाहर निकल आयी और पुरोहितजीके पीछे-पीछे जानेवाली शकुन्तलाको गोदमें ले, आकाशमें उड़ गयी! पुरोहितजी देखतेके-देखते रह गये। उनकी समझमें नहीं आया, कि यह कैसा अचम्भा हो गया! उन्होंने इस घटनाका जो वर्णन राजासे किया था वह हम पहले लिख आये हैं।

स्वर्गमें पहुंच कर मेनकाने शकुन्तलाको अपना परिचय दिया और दोनों मां-बेटी खूब गले मिल कर रोईं। उस दिनसे शकुन्तला बड़े यत्नके साथ अपनी मांके पास ही रहने लगी।

धीरे-धीरे उसके गर्भके दिन पूरे हुए और उसने एक देवकुमार जैसा सुन्दर बालक प्रसव किया। वह बालक कभी इन्द्रके नन्दन-काननमें क्रीड़ा करता और कभी हेमकूट-पर्वत पर महामुनि-कश्यप के आश्रममें ऋषि-बालकोंके साथ खेलता।

क्रमशः वह बालक बड़ा होने लगा। जिस समय उसकी अवस्था छः सात वर्षकी थी, उसी समय देवराज इन्द्रके आदेशानुसार राजा दुष्यन्तका स्वर्गमें आगमन हुआ और वे कुछ दिनों तक वहां रहे, परन्तु उन्हें क्षणभरके लिये भी यह बात न सूझी, कि अपनी प्रियाका यहां भी तो अनुसन्धान करें।

आज किस प्रकार उन्होंने एकाएक कश्यपके आश्रममें आकर अपने बालकको देखा और अनजानमें ही उस पर अनुरक्त हो गये तथा धीरे-धीरे उनका सन्देह पक्का होता गया, यह हम ऊपर लिख आये हैं।

राजा अपने मनमें तरह-तरहके तर्क-वितर्क और तपस्विनियों की बातों पर सोच-विचार कर ही रहे थे, कि इसी समय अपने पुत्रको बहुत देर तक न देखनेके कारण घबराई हुई शकुन्तला, उसे तलाश करती हुई वहां आ पहुंची।

उसकी वह विरहकी मारी, दुबली पतली और मलिन वेशवाली देह देख, राजाके नेत्रोंमें आंसू उमड़ आये और विस्मय तथा खेद-भरी दृष्टिसे उसकी ओर देखने लगे। उनके मुंहसे एक बात भी न निकली।

शकुन्तला भी अकस्मात् अपने स्वामीको वहां देख, इस घटना

को स्वप्न समझ कर स्थिर दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगी। उसकी आंखें भर आयीं, देह कांप उठी ! बालक, अपनी मांको आते देख 'मां-मां' कहता हुआ उसके पास चला गया और पूछने लगा,— "मां ! वह कौन है ? उसे देख कर तू रोती क्यों है ?"

यह सुन, शकुन्तलाने रोते ही रोते कहा,—"बेटा यह बात मुझसे न पूछ कर अपने भाग्यसे पूछ !"

कुछ देर बाद अपने मनका उछलता हुआ वेग रोक, राजाने शकुन्तलासे कहा,—"प्रिये, मैंने जो अन्याय तुम्हारे साथ किया है, वह कहा नहीं जा सकता। उस समय मेरी मति मारी गयी थी, इसलिये मैंने तुम्हें लौटा दिया, घरमें बैठने तक न दिया ! कुछ ही दिनों बाद मुझे सारी बातें याद हो आयीं—तबसे मैं किस कष्टके साथ समय बिता रहा हूं, कितना दुःख पा रहा हूं, वह मेरा अन्तरात्मा ही जानता है। मुझे यह आशा नहीं थी, कि मैं फिर तुम्हें देख पाऊंगा। पर नहीं, भाग्यमें मिलना बदा था। अतएव आज बरसोंके बिछुड़े हुए फिर आ मिले हैं ! इस समय मेरे किये हुए अपमानोंको भूलकर मुझे क्षमा करो !"

यह कह राजा, कटे हुऐ वृक्षकी भांति भूमि पर गिर पड़े। यह देख शकुन्तलाने बड़ी घबराहटके साथ राजाका हाथ थाम लिया और कहा,—"आर्यपुत्र, उठिये, उठिये ! आपका कोई दोष नहीं है, आप व्यर्थ क्यों इतने दुःखी होते हैं ! सब मेरे भाग्यका ही दोष था इतने दिनों बाद आपने इस दुःखिनीको याद किया, इसीसे मेरे सब दुःख दूर हो गये !" यह कहते-कहते शकुन्तलाके नेत्रोंसे आंसुओं की धारा बहने लगी।

राजाने किसी प्रकार अपनेको सम्भाल, आंखोंमें आंसू लाकर कहा,—"प्रिये, मैंने उस समय तुम्हारे लाख रोने-कलपने पर भी कुछ

विचार न किया—तुम्हें दूधकी मक्खीकी तरह निकाल फेंका—इसका मुझे बड़ा भारी दुःख है। जब-जब मैंने इस बातको सोचा है, तब-तब मेरा हृदय फटने लगा है। आओ आज तुम्हारी आंखें अपने हाथोंसे पोंछकर मैं अपना वह दुःख दूर करूं! यह कह, राजाने अपने दुपट्टेके एक छोरसे शकुन्तलाकी आंखोंका जल पोंछ दिया। शकुन्तलाका शोक-सागर और भी वेगसे उछलने लगा और उसकी आंखें अधिकाधिक आंसू बरसाने लगीं।

तदनन्तर दुःखका वेग सम्भाल, शकुन्तलाने राजासे कहा,—"आर्यपुत्र, आप फिर इस दुःखिनीको याद करेंगे, इसकी मुझे आशा नहीं थी। यह अघट-घटना क्योंकर घटी, सो मेरी समझमें नहीं आती!"

यह सुन, राजाने कहा,—"प्रिये, तुमने उस समय जो अंगूठी दिखानी चाही थी, वह मुझे कुछ ही दिनों बाद एक आश्चर्यजनक रीतिसे मिल गयी। उसे देखते ही मुझे सब बातें याद हो आयीं। देखो यह अंगूठी वही है न?"

यह कह, उन्होंने अपनी अंगुलीसे वह अंगूठी निकाल कर शकुन्तलाकी अंगुलीमें पहनानी चाही। यह देख शकुन्तलाने कहा,—"नहीं, महाराज, इसे आपही पहने रहिये, मैं न पहनूंगी। इसीने तो एक बार मेरा सर्वनाश ही किया था!"

दोनोंमें इस प्रकारसे बातें हो ही रही थीं—कि इसी समय हंसता हुआ सारथि-मातलि वहां आ पहुंचा और बोला,—"महाराज, आप इतने दिनों बाद अपनी धर्म-पत्नीसे मिले, इस बातसे हम लोगोंको इतना आनन्द हो रहा है, कि कुछ कहा नहीं जा सकता। भगवान् कश्यप भी यह हाल सुन, बड़े प्रसन्न हुए हैं। आप अभी जाकर उनसे मिलिये—वे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" यह सुन, राजाने

शकुन्तलासे कहा,—"प्रिये, चलो हम दोनों ही एक साथ चलकर मुनिके दर्शन करें।"

शकुन्तलाको साथ लिये हुए राजा, मातलिके पीछे-पीछे कश्यपाश्रमकी ओर चले। वहां पहुंचते ही उन्होंने देखा, कि भगवान् कश्यप अपनी सहधर्मिणी अदितिके साथ, एक आसन पर बैठे हुए हैं। राजाने पास जाकर उन्हें और उनकी पत्नीको प्रणाम किया। शकुन्तलाने भी उनका अनुकरण किया। महर्षिने, "चिरञ्जीवी" हो, अखण्ड प्रभावके साथ भूमण्डलपर अपना एकाधिपत्य फैलाओ।" ऐसा कह, आशीर्वाद दिया। इसके बाद वे शकुन्तलासे कहने लगे,—"बेटी, तेरे स्वामी इन्द्रके समान पराक्रमी हैं, अतएव मैं तुझे और क्या आशीर्वाद दूं? केवल यही कहता हूं, कि तू भी इन्द्राणी हो।" दोनोंको इस प्रकार आशीर्वाद दे, ऋषिने उन्हें बैठनेके लिये कहा।

सबके बैठ जानेपर, राजाने हाथ जोड़, विनय भरे वचनोंसे कहा,—"महाराज शकुन्तला आपके सगोत्री, महर्षि कण्वकी पालिता कन्या है। मैंने मृगयाके निमित्त वनमें जा गान्धर्व रीतिके अनुसार इसका पाणि-ग्रहण किया था। इसके बाद अपनी राजधानीमें चले आनेपर, न जाने क्यों मैं सारी बातें भूल गया और यह बेचारी जब मेरे पास बड़ी आशासे गृह-लक्ष्मी बनकर रहनेके लिये आयी, तब मैंने कुछ भी याद न आनेके कारण बड़े अपमानके साथ इसे दूर कर दिया! यह काम कर मैंने महर्षि कण्वका और गोत्र-सम्बन्धसे आपका भी, बड़ा अपमान किया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। अतएव आपसे प्रार्थना है, कि आप मुझे क्षमा करते हुए कृपाकर यह बतलायें कि महर्षि कण्वका क्रोध क्यों कर मेरे ऊपरसे दूर होगा और क्या मैं उनसे क्षमा पा सकूंगा?"

यह सुन, कश्यप-ऋषिने हंसकर कहा,—"बेटा, इसके लिये कोई

चिन्ता न करो। तुम्हारा इसमें कुछ भी अपराध नहीं है। जिस कारणसे तुम्हारी बुद्धि वैसी फिर गयी थी, वह न तो तुम्हें ही मालूम है और न शकुन्तला को ही। इसीलिये मैं तुम्हें वह सब हाल ठीक-ठीक सुनाता हूं। सुननेसे शकुन्तलाके मनमें पतिसे दुतकारी जानेका जो दुःख है, वह दूर हो जायेगा।

इतना कह, ऋषिने शकुन्तलाको सम्बोधन करते हुए कहा,—“बेटी, जब दुष्यन्त तपोवन छोड़ कर अपनी राजधानीमें चले गये, तब एक दिन तू अपने परदेशी-पतिकी चिन्तामें पड़ी हुई कुटीके द्वार पर बैठी थी। इसी समय वहां दुर्वासा-ऋषि अतिथि होकर आये। तुझे तो उस समय बाहरी दुनियांका कुछ ज्ञान ही न था, अतएव तू उनका कुछ भी आदर-सत्कार न कर सकी, इसीसे वे बहुत रुष्ट हो गये और तुझे यह शाप देते हुए चले गये, कि ‘जा, तूने जिसकी चिन्तामें मग्न होकर आश्रममें आये हुए अतिथिका अपमान किया है, वह व्यक्ति कभी तेरी याद तक न करेगा।’ तूने अपनी चिन्तामें डूबी रहनेके कारण उनका यह शाप न सुना, पर तेरी सखियोंने सुन लिया और एकने उनके पास जा, बहुत हाथ-पैर जोड़े। तब उन्होंने कहा,—“यह शाप तो कभी व्यर्थ नहीं जा सकता। पर जब तुम लोगोंने इतना रोया-गाया है, तब यह कह सकता हूं, कि यदि वह उस के पास जाकर किसी तरहका कोई चिन्ह दिखला सकेगी, तो वह उसे अवश्य पहचान लेगा।”

यह कह, राजाकी ओर मुखकर मुनिराज कहने लगे,—“पुत्र, दुर्वासाके इसी शापके प्रभावसे तुम घर आयी हुई शकुन्तलाको न पहचान सके। शकुन्तलाकी सखीके अनुरोधसे ऋषिने शाप-मोचन का जो उपाय बतलाया था, वही न होनेसे तुम इसे याद न कर सके। यदि वह अंगूठी, जो तुम्हारे विवाहकी एकमात्र और पूरी निशानी

थी, शकुन्तलाके पाससे न खो जाती, तो उसे इतना अपमान न सहना पड़ता। पीछे जब तुम्हें अंगूठी मिल गयी, तब आपसे आप सब बातें तुम्हें याद हो आयीं और तुम रात-दिन पश्चात्तापसे जलने लगे। शकुन्तलाको अपमानका बदला तो तुम्हारे इस पश्चात्तापसे ही मिल गया, अब और क्या चाहिये ?"

तदनन्तर महर्षि कश्यपने राजाको सम्बोधन कर फिर कहा,—"बेटा, तुम्हारा यह पुत्र बड़ा भाग्यशाली है। यह एक दिन इस ससागरा और सद्वीपा पृथ्वीका एक-छत्र सम्राट् होगा और भुवनभरका भर्त्ता होनेके कारण 'भरत' नामसे प्रसिद्ध होगा।"

यह सुन, राजाने कहा,—"भगवन्, जब आपने ऐसा आशीर्वाद दिया है, तब जो न हो जाय, वही आश्चर्य है।"

इसके बाद अदितिने कश्यपसे कहा,—"कण्व और मेनकाके पास शीघ्र ही यह संवाद भेज देना चाहिये।"

यह सुनकर महामुनि कश्यपने अपने दो शिष्योंको इस कामके लिये भेजा और राजा तथा शकुन्तलासे कहा,—"जाओ बेटा, तुम लोग भी अब अपनी राजधानीमें जाकर सुख और आनन्दसे धर्म-पूर्वक जीवन-यापन करो।"

राजा दुष्यन्तने महामुनि कश्यपकी बात सुनकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और पत्नी-पुत्र सहित—देवराज इन्द्रके रथपर चढ़कर मर्त्यलोकको चले आये।

\+ + + +

बहुत दिनोंके बाद राजाको दानव-युद्धमें विजय प्राप्त कर पत्नी पुत्र सहित राजधानीमें आते देख, समस्त प्रजा प्रसन्न हुई और राजा भी पत्नी और यशस्वी पुत्रको पाकर, सुखपूर्वक—दान-धर्म करते हुए निष्कण्टक राज्य करने लगे। राजा दुष्यन्त और महारानी शकु-

न्तला, अपनी अलौकिक प्रेमधारासे—इस धरा-धाममें स्वर्गकी सृष्टि करने लगे ।

यथासमय वही दुष्यन्त-पुत्र भरत, इस देशके एक-छत्र—चक्र-वर्ती—धमपरायण सम्राट् हुए, जिनके नामसे इस देशका नाम आज भी 'भरत-खण्ड' के नामसे प्रसिद्ध है ।

भारतीय-नारी-रत्नमालाके

* दस रत्न *

सावित्री-सत्यवान।

अनेक रङ्ग बिरंगे चित्रोंसे सुसज्जित। सुन्दर ऐण्टिक पेपर। इस पुस्तकमें सती-शिरोमणि सावित्रीके अद्भुत चरित्रको सरल और प्राञ्जल भाषामें ऐसे अच्छे ढङ्गसे लिखा गया है कि जिसके पढ़ने से हिन्दू बालक-बालिकायें तथा हिन्दू रमणियां पातिव्रत्यके मर्मको सरलतासे हृदयङ्गम कर सकें। सती-शिरोमणि सावित्रीके पुण्यमय चरितको युगयुगान्तरसे सती-रमणियोंका आदर्श माना जाता है। सावित्री-सत्यवानके हृदय-ग्राही, मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद उपाख्यानको पढ़कर हरएक हिन्दू सन्तानको अपना मन और प्राण पवित्र करने चाहिये। मूल्य सर्वसुलभ ।।) मात्र। हमारी इस सीरीज़की अनेक प्रसिद्ध पत्रोंके सम्पादकों और शिक्षा-विभागके डायरेक्टरोंने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की है।

हिन्दू जातिके कीर्ति-स्तम्भ—

नल-दमयन्ती।

अनेक रङ्ग बिरंगे चित्रोंसे समलंकृत। सुन्दर ऐण्टिक पेपर। इसमें पुण्यश्लोक राजा नल और परम पति-भक्ति-परायणा महिमान्विता दमयन्तीकी पवित्र और हृदयग्राही मनोरञ्जक कथाका उल्लेख है। राजा नल परम धार्मिक थे। उनमें जूवा खेलनेका एक भयङ्कर व्यसन था, जिसके प्रभावसे पुण्यश्लोक राजा नल, अपना सर्वस्व खोकर वनमें मारे-मारे फिरे। पतिभक्ति परायणा दमयन्ती, राजकुमारी होकर भी उनके पीछे पीछे भिखारिणी वेश धारण कर फिरने लगी। वनमें कितने कष्ट उठाने पड़े और अन्तमें पति-पत्नी-विच्छेद हुआ। किन्तु दमयन्तीके पातिव्रत्यके ही प्रभावसे अन्तमें भवर-मिलन और स्वराज्य प्राप्त हुआ। मूल्य ।।) मात्र।

भारतके सौभाग्य सूर्य ।

शैव्या-हरिश्चन्द्र ।

अनेक रङ्ग बिरंगे चित्रोंसे सम्वलित । हिन्दू जातिके कीर्त्ति-स्तम्भ, भारतके सौभाग्य-सूर्य, गौरव-रवि, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र और उनकी महिमामयी सती-शिरोमणि पत्नी शैव्या, अयोध्याके राजा और रानी थे । ऋषि विश्वामित्रके साधारण कोपके कारण उन्हें अपना समस्त राज्य क्षणभरमें छोड़कर पथका भिखारी बनना पड़ा ! शैव्या ब्राह्मणकी दासी बनी । स्वयं महाराज हरिश्चन्द्र दक्षिणाकी पूर्तिके लिये एक चाण्डालके दासत्वको स्वीकार करनेके लिये विवश हुए । शैव्या और हरिश्चन्द्रके एकमात्र पुत्रके आकस्मिक काल-कवलित हो जानेके कारण एकाकिनी शैव्या पुत्रको कन्धे पर लाद कर जब काशीके श्मशानमें पहुंची, तो चाण्डाल रूपी राजा-हरिश्चन्द्रसे भेंट हुई ! शैव्या-हरिश्चन्द्र पौराणिक उपाख्यान है । इसमें लिखी करुण-कहानीको पढ़ कर रोमाञ्च हो जाता है । मूल्य ।।)

नारी-समाजका सुन्दर शृंगार ।

सीता-देवी ।

अनेक रङ्गीन चित्रोंसे सुसज्जित । रामप्रिया महीयसी भगवती सीताको कौन नहीं जानता । कैसे विचित्र ढङ्गसे जन्म हुआ । हर-धनु भंग होने पर स्वयं मर्यादापुरुषोत्तम रामसे विवाह हुआ । माता कैकेयीका कोप और वन-गमन । राजा दशरथकी मृत्यु, पञ्चवटीमें सीता-हरण, हनुमान-सुग्रीवकी मित्रता, लङ्का पर चढ़ाई और रावणका सकुटुम्ब वध । अशोक-वनसे सीताका आगमन । रामकी आशङ्का और सीताकी अग्नि-परीक्षा । रामचन्द्रजीकी राज्य-प्राप्ति । लोकापवादके कारण रामका सीताको निर्वासित करना । कुश और लवका जन्म । रामचन्द्रजीका अश्वमेध-यज्ञ, बाल्मीकि मुनिका कुश-लवको लेकर जाना । बालकों द्वारा अद्भुत रामचरित-कीर्तन । सीताका पुनः आगमन । लोगोंकी फिर आशङ्का और सीताकी पुनः परीक्षाकी तैयारी । माता वसुन्धराका वक्ष-विदीर्ण और सीताकी अपूर्व समाधि ! इस उपाख्यानको पढ़ कर हृदय पवित्र भावोंसे पूर्ण हो जाता है । मूल्य सर्वसुलभ ।।=) मात्र रखा गया है ।

शङ्कर-प्रिया सतीशिरोमणि—

सती-पार्वती ।

हरएक हिंदू घरमें हर-पार्वतीका पवित्र नाम बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ स्मरण किया जाता है। इस उपाख्यानमें सती-पार्वती का बाल्यकाल, सतीकी शिक्षा, सतीकी तपस्या, सतीका शिव-दर्शन, सती-स्वयम्बर, सतीका विवाह, दक्ष यज्ञमें शिवका अपमान, सतीका देह त्याग। वीरभद्र द्वारा दक्ष-यज्ञ भङ्ग तथा दक्ष-वध। सतीका दूसरा अवतार, बाल्यकाल, शिव-पूजन, मदन-भस्म, पार्वती की घोर तपस्या, प्रेम-परीक्षा, सतीका विवाह और गणेश तथा कार्त्तिकेयका जन्म। इसको पढ़नेसे साधारण पढ़ी लिखी भारतीय-रमणियां और अल्प-वयस्क बालक-बालिकायें बड़ी सरलतासे हर-पार्वतीकी विचित्र कथाको हृदयङ्गम कर सकती हैं। अनेक रंगीन चित्रोंसे सुसज्जित। सुन्दर कागज पर छपी हुई। मूल्य सर्वसुलभ बड़ी ।|) मात्र।

साहित्य-संसारका शृङ्गार।

शाकुन्तला।

संसारप्रसिद्ध कविकुलचूड़ामणि कालिदासका 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' नाटक-उपाख्यानके रूपमें अनेक चित्रोंसे सुसज्जित। संसार-प्रसिद्ध महाकवि कालीदासके इस जगद्व्यापी संस्कृत नाटक का उपाख्यानके रूपमें उल्लेख किया गया है। उपाख्यानकी एक एक पंक्ति, कवित्व और कल्पना कौशलसे परिपूर्ण है। शाकुन्तला उपा-ख्यानमें दाम्पत्य स्नेह, नारी-कर्त्तव्य, सती-धर्म और विश्व-विश्रुत प्रेमका जगमगाता उज्ज्वल चरित्र-चित्रित किया गया है। इसके पढ़नेसे इतिहास, उपन्यास, नाटक और काव्यका एक साथ आनंद आता है। बाल, वृद्ध, वनिता सभीको इस अद्भुत चरित्रको पढ़ कर जीवन सफल करना चाहिये। भाषा सरल है। अनेक रंगीन चित्र देकर सुसज्जित किया गया है। मूल्य सर्वसुलभ ।|=) मात्र।

धनुर्धर अर्जुन प्रिया—

देवी-द्रौपदी ।

द्रौपदीके पवित्र उपाख्यानका उल्लेख महाभारतमें बहुत ही अच्छे ढंगसे हुआ है। इस उपाख्यानमें द्रौपदीका जन्म, बाल्यकाल, स्वयम्बर, विवाह तथा भगवान् श्रीकृष्णके साथ बन्धुत्व-स्थापन, चीर हरण, पाण्डवों पर विपत्ति और राज्य हरण तथा देश-निर्वासन। विराट-राजमहलमें दासी कर्म, कीचक-वध और अन्तमें कौरवोंसे घनघोर संग्राम। पाण्डवोंकी विजय-वैजयन्ती, भगवान् श्रीकृष्णका सहयोग और सहायता आदि समस्त बातोंका उल्लेख बहुत ही सरस और सरल भाषामें किया गया है। द्रौपदीका चरित्र अनेक राजनीतिक रहस्योंसे पूर्ण है। पुस्तकमें अनेक भावपूर्ण रंग बिरंगे चित्र देकर इसकी शोभा द्विगुणित करदी गई है। बढ़िया पेपर और सुन्दर छपाई। मूल्य सर्वसुलभ ।।=) मात्र रखा गया है। सभी लोगोंने इसकी प्रशंसा की है।

पुराण-प्रसिद्ध उपाख्यान—

शर्मिष्ठा-देवयानी ।

सुन्दर छपाई और बढ़िया कागज। अनेक रंगीन चित्रोंसे संबलित। देवी-शर्मिष्ठाका चरित्र अपने घरकी बहू बेटियोंको पढ़ाकर हृदय पवित्र कीजिये। श्रीमद्भागवतमें शर्मिष्ठा-देवयानीका उपाख्यान लिखा हुआ है। इस उपाख्यानको पढ़नेसे वृथा अभिमान करने वालियोंका अभिमान नष्ट होता है। शर्मिष्ठाके सदय और करुणापूर्ण भावसे सत्यनिष्ठा एवं नारी-कर्तव्यकी शिक्षा मिलती है। पिताकी मर्यादाकी रक्षाके लिये शर्मिष्ठाने जो आत्म-त्याग कर दिखाया, उसका उदाहरण मिलना कठिन है। देवयानीने क्रोधवश हो जो भयानक काण्ड उपस्थित कर दिया था, वह शर्मिष्ठाके सौजन्य और कर्त्तव्य-निष्ठा तथा सहृदयताके कारण दूर हो गया। क्रोध पर दयाने विजय प्राप्त की। इसीलिये शर्मिष्ठाकी कर्तव्य-निष्ठाके प्रभावसे देवयानीका नाम भी अमर हो गया मूल्य वही सर्वसुलभ ।।) मात्र रखा गया है।

कृष्ण-भगिनी-अर्जुन-प्रिया-महीयसी—

सुभद्रा ।

अनेक रंगीन चित्रोंसे सुसज्जित । इस उपाख्यानमें सुभद्रा का जन्म, बाल्यकाल और सुभद्रा हरण, महाबाहु बलदेवका कोप, श्रीकृष्णका उपदेश और अर्जुनकी मैत्री । महाभारतका भयङ्कर युद्ध । वीर-बालक अभिमन्युका सप्तरथियोंके साथ घोर संग्राम । अभिमन्युका बल-विक्रम प्रदर्शनके पश्चात् अन्यायपूर्वक वध । जयद्रथकी नीचता, अर्जुनकी प्रतिज्ञा, कौरवोंका षड्यन्त्र, गुरु द्रोणकी व्यूह-रचना, भगवान् श्रीकृष्णकी राजनीतिक चाल और जयद्रथ-वध आदि बातोंका सरल भाषामें वर्णन किया गया है । महिमामयी वीर-प्रसविनी सुभद्राका पवित्र चरित प्रत्येक भारतीय नारी और बालक-बालिकाओं को पढ़ना चाहिये । इस उपाख्यानको सब लोगोंने बहुत पसन्द किया है । मूल्य सर्वसुलभ ॥=) मात्र रखा गया है ।

वीरबाला-महीयसी—

संयुक्ता ।

अनेक रंगीन चित्रोंसे सुसज्जित । हिन्दू धर्मरक्षक—महाराज पृथ्वीराज और वीर-रमणी महीयसी संयुक्ताके नामको कौन नहीं जानता ? हिन्दू-जातिकी रक्षाके लिये महाराज पृथ्वीराजने सर्वस्व स्वाहा कर दिया और अन्तमें स्वयं भी हिन्दूजातिकी रक्षाके अग्नि-होत्रमें बलिदान हो गये । पृथ्वीराजका बदला लेनेके लिये वीर-क्षत्राणी संयुक्ताने शस्त्र उठाया—और सहस्रों यवनोंको मार-काट डाला । संयुक्ताने जैसा बल-विक्रम युद्धमें दिखाया, उसका उदाहरण इतिहासमें नहीं मिलता । इस पवित्र वीरतापूर्ण चरित्रको पढ़ कर प्रत्येक भारतीय-रमणी अपने आत्मगौरवको अनुभव करेगी । हरएक [illegible]काको इस चरित्रको पढ़ कर अपने चरित्र को ऊंचा बनाना चाहिये । हमारी इस पुस्तककी मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की गयी है । मूल्य वही सर्वसुलभ ॥=) मात्र ।

वीर-मुकुट-मणि, चक्र-व्यूह-भञ्जक—

वीर-बालक-अभिमन्यु।

धनुर्धर गाण्डीवधारी अर्जुन तथा कृष्ण-भगिनी महीयसी सुभद्राके एक मात्र वीरवर पुत्र, वीर बालक अभिमन्युकी वीरताको कौन हिन्दू नहीं जानता। वीरवर अभिमन्यु, अर्जुन और सुभद्राके पुत्र थे और भगवान् श्रीकृष्णके परमप्रिय भानजे और शिष्य। वीरवर अभिमन्यु जैसे सुकुमार बालक थे, उससे कहीं बढ़ कर विद्वान्-नीतिज्ञ, धर्मनिष्ठ और कर्तव्य परायण थे। वीरतामें तो वे अपने विश्व-विश्रुत पिता धनञ्जय और महागुरु मामा श्रीकृष्णके समान थे। अर्जुनकी अनुपस्थितिमें पाण्डवोंका सर्व-नाश करनेके लिये-जिस समय गुरु द्रोणने चक्र-व्यूह रचा, तो सोलह वर्षके वीर-बालकने उस विचित्र चक्र-व्यूहको भंग कर जो वीरता प्रदर्शित की थी, वह भारतके इतिहासमें सदा अमर रहेगी। इस पुस्तकमें उन्हीं वीरवर अभिमन्युका जीवनचरित सरल भाषामें लिखा गया है। अनेक चित्रोंसे सुसज्जित। हरएक बालक-बालिकाको इस चरित्र को पढ़ना चाहिये। मूल्य वही ।॥=) मात्र।

स्वनामधन्य रामचन्द्र और देवी-सीताके

विश्व-विख्यात पुत्र-द्वय—

लव-कुश।

भक्त-शिरोमणि तुलसीदासजीकी कृपासे भारतके घर-घरमें आज रामायणका प्रचार है। इसलिये मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामके वीरवर पुत्रद्वय लव-कुशका परिचय देना व्यर्थ है। इस पुस्तकमें बालकोपयोगी सरल भाषामें रामायणका संक्षिप्त वृत्तांत, देवी भगवती सीताका निर्वासन, वाल्मीकि-आश्रममें लव कुशका जन्म, और शास्त्र तथा शस्त्र-शिक्षा। रामका अश्वमेध-यज्ञ। लव-कुशका यज्ञके घोड़ेको पकड़ना। रामचन्द्रजी की सेनाकी चढ़ाई। सुग्रीव, विभीषण, हनुमान, शत्रुघ्न और लक्ष्मणका वीर बालक लव-कुश द्वारा पराजित होना। रामचन्द्रके दरबारमें बालक द्वय द्वारा अद्भुत राम-गुण-गान, इसके बाद, आत्म-परिचय, भगवती सीताका पुनर्ग्रहण और पुनः अग्नि-परीक्षाकी तैय्यारी, परन्तु सीताका पृथ्वीमें-प्रवेश हो जाना आदि बातें, बड़ी ही ओजस्विनी तथा सरल भाषामें लिखी गई है। बालक बालिकाओंके लिये इस पुस्तकका पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। यह बाल-रामायणकी रामायण और जीवन चरित का जीवन चरित है। मूल्य वही ।॥=) मात्र।

प्रातःस्मरणीय—आदित्य ब्रह्मचारी—

भीष्म ।

महामहिम भीष्म, महाराज शान्तनुके औरस और भगवती गंगाके गर्भजात पुत्र थे। जिस समय महाराज शान्तनु द्वितीय विवाह करना चाहते थे, उस समय महाराजके श्वसुरने महाराजसे यह प्रतिज्ञा करवानी चाही कि राज्यके उत्तराधिकारी भीष्म नहीं होंगे! युवराज, उनकी पुत्रीके गर्भजात पुत्र ही होंगे। महाराज शान्तनु इसके लिये तैयार न हुए। परन्तु जब पितृ-भक्त पुत्र भीष्मको इस बातका पता लगा, तो उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की, कि मैं उत्तराधिकारी नहीं हूंगा और आजन्म विवाह न कर ब्रह्मचारी रहूंगा! महाराज शान्तनुका विवाह हो गया। भीष्मकी विमाताके गर्भजात पुत्र ही राज्यके अधिकारी हुऐ। परन्तु भीष्मने आजन्म ब्रह्मचारी रह कर देशकी सेवा की। उस समय भीष्म जैसा सत्य प्रतिज्ञ, वीर, प्रतापी, महाबली, शास्त्रवेत्ता, देशमें कोई नहीं था। महाभारतके महासमरमें जो प्रचण्ड वीरता भीष्मपितामहने दिखाई थी, वह विश्वविख्यात है। अनेक चित्र। मूल्य वही ॥=)

हिन्दू जातिके परमप्रतापी अन्तिम चक्रवर्त्ती सम्राट्—

पृथ्वीराज ।

जिस समय भारत पर विदेशी-यवनोंकी लोलुप-दृष्टि लगी हुई थी और वे बार-बार भारत पर आक्रमण करते और मुंहकी खाकर बेरंग लौट जाते थे, यह उसी समयका रक्त-रंजित इतिहास है। उस समय यदि जयचन्द जैसे देश-द्रोही जातीयशत्रु, भारत वसुन्धराको कलंकित न करते, तो आज भारतका मान-चित्र और ही किसी रूपमें दृष्टिगोचर होता। न आज हिन्दू-मुसलमानोंकी समस्या उपस्थित होती, न स्वाधीनता-प्राप्तिके लिये इतने बलिदानोंकी आवश्यकता पड़ती। आज जो सात करोड़ हिन्दू सन्तान, यवन-धर्मग्रहण करके हिन्दू-देवी-देवताओंके मन्दिरों और मूर्तियों को भ्रष्ट कर रहे हैं, तथा हिन्दी, हिन्दू सभ्यताको रसातलमें भेजनेकी कोशिश कर रहे हैं, इसकी कल्पना भी न होती। उस समय जिस वीरताके साथ वीरवर पृथ्वीराजने यवनोंके छक्के छुड़ाये थे—वे हिन्दू-इतिहासकी प्रधान सामग्री है। अन्तमें पृथ्वीराज चल बसे! कालातीत समयसे फहराती हुई हिन्दू जातिकी आर्यकीर्त्ति-पताका सदाके लिये नोच-खोंचकर भूमि पर गिरादी गयी! स्वाधीन हिन्दूजातिने पराधीनताकी बेड़ियोंको पहन लिया! भाषा सरल। अनेक चित्रोंसे सुसज्जित। मूल्य १) मात्र।

हिन्दू-सूर्य, क्षत्रिय-कुल-मुकुट-मणि—

महाराणा-प्रताप ।

जिस समय यवन-साम्राज्यकी अग्नि-ज्वालामें समस्त देश, धू-धू करके बिना रोक टोकके दग्ध हो रहा था,—भारतके शिरश्च विख्यात राजा महाराजागण जिस समय अपनी मुकुट-मणियोंको मुगल सम्राटके पाद-पद्मोंमें निक्षेप करनेमें ही अपना गौरव समझते थे, महा नीतिनिपुण मुगल-सम्राट अकबर, एकके बाद एक हिन्दू राज्यको हड़प करनेमें लग रहा था। ऐसा मालूम होता था कि यदि साम्राज्य-लोलुप मुसलमानोंकी यही चाल बराबर जारी रही, तो शीघ्र ही संसारसे हिन्दूजातिका नामोनिशां तक मिट जायगा। सम्राट् अकबरने ओहदों और पदोंका लालच दे और अपनी अतुल शक्तिका आतंक दिखा कर, कुलीन राजपूतोंकी कन्याओं तकसे विवाह करना शुरू कर दिया था। यवन-साम्राज्यकी चिनगारियां समस्त देशमें उड़ रही थीं। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे इस महा-क्रान्तिकी गोदमें शीघ्र ही विशाल हिन्दूजाति विलीन होनेवाली हो। हिन्दू धड़ा-धड़ मुसल्मान हो रहे थे। उसी समय क्षत्रियकुल-मुकुटमणि महाराणा प्रतापका उदय हुआ। समस्त देशके राजा महाराजा, मुगल-सम्राट्की वश्यता स्वीकार कर चुके थे। कितने ही भूपतिगण अपनी कन्याओं और भगिनियोंको यवनोंकी पर्यंकशायिनी बना कर हिन्दू-जातिको कलंक-कालिमासे कलुषित कर चुके थे—और मुगल सम्राट् की मातहतीमें छोटे बड़े-पद पाकर गुलामोंकी तरहसे भटकते फिरते थे। उसी समय महाराणा प्रतापने एक ऐसी हुंकार-ध्वनि की, कि समस्त देश कांप उठा! मुगल-सम्राट्का तख्तो-ताऊस हिल गया! हिन्दुओंने बिजलीकी कड़कड़ाहटमें देखा कि हिन्दु-जातिका अस्तोन्मुख सूर्य अभी अस्त नहीं हुआ है! मेवाड़की कन्दराओंमेंसे उसकी रश्मियां पहुंच कर डूबती हुई हिन्दूजातिको आश्वासन दे रहा थीं! महाशक्तिशाली मुगल सम्राट् ने हिन्दू जातिके मेवाड़में टिमटिमाते हुए इस दीयेको गुल करनेके लिये एक बार नहीं, जन्मभर जोर लगाया, परन्तु महाराणा प्रतापका, प्रताप—नहीं—नहीं हिन्दू जातिका प्रताप, बराबर उसको अंगूठा दिखाता रहा। मुट्ठी भर साथियोंको लेकर महाराणा प्रतापने जीवनकी अन्तिम घड़ी तक, हिन्दू-जातिकी विजय-पताकाको बराबर फहराये रखा। यह उनही महायशस्वि महाराणा-प्रतापका ओजस्विनी भाषामें लिखा सचित्र जीवन चरित और इतिहास है। मूल्य १) मात्र। बालक-बालिकाओंको पढ़ाइये और वीर बनाइये।

वीर-शिरोमणि हिन्दूधर्म-संरक्षक—

छत्रपति-शिवाजी।

मुगल-साम्राज्य समस्त देशको हड़प कर चुका था। सम्राट् औरङ्गजेबने हिन्दुओंको मुसल्मान बनानेके लिये अपनी समस्त शक्ति लगा दी थी। हमारे धर्मशास्त्र, मठ-मन्दिर, गो-ब्राह्मण, साधु-संन्यासी, उसकी दया पर जीवित थे! औरङ्गजेब चाहता था कि एक बार समस्त भारतके हिन्दुओंको मुसल्मान बना डालूं! अखिल-भारतवर्षमें मन्दिरोंकी जगह मस्जिदें बन जांय। प्रयाग, काशी, हरद्वार, मथुराको मक्का-मदीना और काबा बना डाला जाय। अनादि समयसे जहां वेद-ध्वनिसे आकाश-मण्डल मुखरित होता रहा है, वहां नमाज, कलमा, अजानका बोलबाला हो जाय। इसी समय दक्षिणके एक छोटेसे मुसल्मानी राज्य बीजापुरके कर्मचारीके यहां एक बालकका जन्म हुआ। पूर्वजन्मके पुण्य-प्रतापसे उसे ऐसी सुविधाएं मिलीं कि बचपनमें ही उसे आत्म-बोध हो गया। उसने आसपासके गंवार-मावलोंको साथ लेकर सङ्गठन शुरू किया, और अन्तमें गुरु रामदासके उपदेशसे इसी बालकने बिना विद्या-वैभव और धन-दौलतके, हिंदू-साम्राज्य स्थापित करनेका बीड़ा उठाया! दक्षिणके समस्त राज्योंको छीन-झपट कर महान् हिन्दूधर्मकी शताब्दियोंसे गिरी हुई विजय-पताकाको फहरा दिया। समस्त देशमें हलचल हो उठी। सम्राट् औरङ्गजेबका आसन डोला। उसने अपनी समस्त शक्ति लगा कर शिवाजीको खर्व करना चाहा। इसके लिये लाखों सैनिक रणभूमिकी भेंट चढ़े, करोड़ों रुपया बर्बाद हुआ, परन्तु शिवाजीकी शक्ति बढ़ती ही गयी। औरङ्गजेबने धोखा देकर इमान्दारीका खून किया और इन्हें आगरामें बन्दी तक कर लिया। परन्तु वीरवर शिवाजी कैद तोड़कर भाग गये और जीवनकी अन्तिम घड़ी तक हिन्दूधर्मकी रक्षा करते रहे। इस पुस्तकमें उन्हीं शिवाजीका जीवन-चरित्र तथा उनके अद्भुत कार्य-कलापोंका वर्णन है। शिवाजीका ऐसा अच्छा सचित्र जीवन-चरित आज तक किसी भाषामें नहीं निकला। दर्जनों चित्र हैं। भाषा ओजस्विनी। आप पढ़िये और बालक-बालिकाओंको पढ़ाकर उनके चरित्रको गठित कीजिये। १॥)

वैदिक-धर्म-प्रवर्तक बौद्धधर्म-विध्वंसक—

शङ्कराचार्य ।



महात्मा बुद्धके बाद भारतमें बौद्ध-धर्मका बहुत अधिक प्रचार हो गया था। राजा और प्रजा तथा पण्डित और मूर्ख सभी बौद्ध-धर्ममें दीक्षित हो गये थे। कहीं-कहीं जो थोड़े बहुत वैदिक-धर्मी थे भी, उनका बहुत बुरी तरहसे अपमान और तिरस्कार किया जाता था। पाखण्ड और हिन्साको विनष्ट करनेके लिये आविर्भूत हुए बुद्ध-धर्मके अनुयायी, महा-तामसिक, पाखण्डी, दुराचारी और लम्पट होकर हिन्सा करने लगे थे। राजा-महाराजाओंके बौद्ध-मतानुयायी हो जानेके कारण बौद्धोंको वैदिकधर्म पर कुठाराघात करनेके लिये पर्याप्त प्रश्रय मिल गया था। लगातार कई शताब्दियों तक भारतमें नास्तिकतावादका बोलबाला रहा। ऐसा मालूम होता था कि यदि बौद्ध-धर्मके अत्याचार इसी प्रकारसे जारी रहे, तो वैदिक धर्मकी इतिश्री हो जायेगी! भारतवासी अपने असली स्वरूपको खोकर अज्ञानताके गर्तमें समा जांयगे! इसी समय भगवान् शंकराचार्यका अवतार हुआ। उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रह कर नास्तिकतावादका खण्डन किया और पुनः सत्य सनातन-वैदिक-धर्मकी स्थापना कर वेदान्तका प्रचार किया। उस समय यदि शंकर स्वामी न हुए होते तो, आज वैदिकधर्मका नाम भी केवल इतिहास की सामग्री ही होता। शंकर-स्वामीका ऐसा अच्छा सचित्र जीवन-चरित, आज तक किसी भाषामें प्रकाशित नहीं हुआ। इस पुस्तकको पढ़नेसे तत्कालीन भारतका इतिहास, शंकर स्वामीका जीवन, उनके कार्यकलाप तथा बौद्धों और वामियोंके लम्पटतापूर्ण कार्य एवं अद्वैत-वादके सिद्धान्त पढ़नेको मिलेंगे। 'शङ्कर-दिग्विजय' का इसको हिन्दी-संस्करण समझिये। मूल्य १।।) मात्र।



भारतके सौभाग्यसूर्य, कीर्ति-स्तम्भ गौरव-रवि—

श्रीकृष्ण।

आनन्द-कन्द गीताके उपदेष्टा, महाभारतके सूत्र-चालक, श्रीमद्भागवत्के प्रधान नायक, महा क्रान्तिकारी भगवान् श्रीकृष्णको कौन नहीं जानता? जिनके निष्काम-कर्मके आदर्श उपदेश, कर्तव्य-पालन करनेकी गम्भीर वाणीको अपनानेके लिये, अखिल ब्रह्माण्ड व्याकुल हो रहा है। श्रीकृष्णके समान सोलहों कलापूर्ण अवतार न संसारमें कभी हुआ है—न होगा। धन्य हैं वे गोपाल-बाल, जिनके साथ श्रीकृष्ण खेले-कूदे। धन्य हैं वे गोपियां, जिनके साथ रासलीला की। हमारा कोटि कोटि प्रणाम है—वृन्दावन-गोकुलके उस कालिन्दी-तटको तथा वहांके जल, वन, पर्वतोंको—जहां श्रीकृष्णने बाल्यकाल व्यतीत किया। जिस समय श्रीकृष्णका अवतार हुआ, उस समय क्षत्रिय-राजकुल नष्ट हो रहे थे। वर्णव्यवस्था नष्ट होती जाती थी। अधर्माचरण और अनीतिने पुण्यभूमि भारतवर्षके वायुमण्डलको अपवित्र कर दिया था। वैदिकधर्मके माननेवाली आर्यजाति अधःपतित हो रही थी। राज-काजमें, समाजमें और धर्ममें क्रान्तिकी जरूरत आ पड़ी थी। भगवान् श्रीकृष्णने अवतार धारण कर समस्त देशमें भीषण क्रान्ति की। लोप होते हुए वैदिकधर्मको बचाया और कवचस्वरूप गीताका ऐसा उपदेश दिया, जिसके प्रभावसे कल्प-कल्पान्तरमें भी आर्यजातिका विनाश नहीं हो सकता। इसमें श्रीकृष्णके चरित की सभी बातें ओजस्विनी भाषामें लिखी गई हैं। तीस चित्रोंसे सुसज्जित है। श्रीकृष्णका ऐसा अच्छा सर्वाङ्गसुन्दर सचित्र, सस्ता, जीवन-चरित, किसी भाषामें भी नहीं छपा। आप पढ़िये, अपने घरकी स्त्रियोंको पढ़ाइये तथा बालक-बालिकाओंको पढ़ा कर उनके चरित्रको आदर्श बनाइये। केवल इस चरित्रको पढ़नेसे ही श्रीमद्भागवत् और महाभारतका सार-तत्त्व आप सरलतासे हृदयङ्गम कर सकेंगे। मूल्य १।।) मात्र।

मेवाड़के बलिदानोंका रक्त-रञ्जित इतिहास—

मेवाड़-गौरव।

स्वाधीनता-प्राप्ति के लिये संसारमें अनेक देशोंने एकसे एक बढ़ कर बलिदान किये हैं। फ्रान्स, अमेरिका, रूसका नाम अमर हो गया। इनमें भी वीर-प्रसविनी आयर्लैण्डकी भूमिके सुपुत्रोंने जो बराबर बारहसौ वर्ष तक स्वाधीनता-प्राप्तिके लिये आत्म बलिदान कर दिखाया—उसका उदाहरण संसारमें मिलना कठिन है। परन्तु भारतवर्षमें भी वीर-भोग्या वसुन्धरा मेवाड़ने जो अपूर्व बलिदान कर दिखाया है, उससे विशाल भारतका मस्तक आज भी ऊंचा है। जिस समय मुगल-साम्राज्य की विभीषिकासे समस्त देश काम्प रहा था, देशी राज-रजवाड़े एकके बाद एक दबते जा रहे थे, उस समय एक मेवाड़ ही ऐसा प्रदेश था, जिसके राजा और प्रजा स्वाधीनताकी रक्षाके लिये मैदानमें डट गये थे। उनको भय दिखाया गया, लोभ-लालचकी मृग-मरीचिकाके दर्शन कराये गये, परन्तु मेवाड़वासी उससे मस भी नहीं हुए। उस समय मेवाड़की स्वाधीनता एवं कुल-गौरवकी रक्षाके लिये वहांके महाराणा ही ने नहीं, बल्कि सामन्त-सरदारों, राज कर्मचारियों, रनवासकी अन्तःपुर-वासिनी वीरांगना महिलाओं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्रों एवं बाल-वृद्ध-बनिताओं तकने अद्भुत और अभूतपूर्व बलिदान कर दिखाये थे। मातृभूमिकी मान गौरवकी रक्षाके सामने, सगे-सम्बन्धियोंका स्नेह, रूपवती स्त्रियोंका रूप-सौन्दर्य भी उनके लिये तुच्छ था। सतीत्व-धर्मकी रक्षाके लिये अनेक पद्मिनोसी सुन्दरी महिलायें अग्निमें कूद कर प्राण विसर्जन कर देती थीं। कुल—गौरवकी रक्षाके लिये कृष्णासी अल्प-वयस्का रूपवती बालिकायें, सहर्ष हंसती हुई गरल पान कर इस भव-बन्धनसे मुक्त हो जाती थीं। कई शताब्दियों तक मुगलोंका संघर्ष मेवाड़से जारी रहा, परन्तु मेवाड़-वासियोंने जरा भी अपना मस्तक मुगलोंके सामने नहीं झुकाया। इस पुस्तकमें मेवाड़के ग्यारह राणाओं और उनके साथी सामन्त-सरदारों एवं अनेक वीरांगना महिलाओंके आत्म-बलिदानोंका ओजस्विनी भाषामें मर्मस्पर्शी चित्र खींचा गया है। कौन ऐसा भारतवासी है, जो वीर-प्रसविनी मेवाड़की गुण-गरिमाको न पढ़ना चाहता हो। अनेक चित्रोंसे सुसज्जित। पहला संस्करण हाथोंहाथ बिक गया। यह दूसरा संस्करण है। मूल्य सर्व-सुलभ १) मात्र।

हिन्दी-बंगला-शिक्षा।

समृद्ध साहित्य, बंग-साहित्यके पढ़नेकी रुचि प्रायः सभी साहित्य-प्रेमियोंको रहती है। इस पुस्तकमें वर्ण-परिचयसे लेकर सन्धि-ज्ञान, शब्द रूपावली, धातुओंके रूप, तद्धित, समास, कृदन्त आदि व्याकरणके समस्त आवश्यक विषयोंका सन्निवेश कर दिया गया है। बंगला शब्दोंकी प्रचुरता और अनुवाद-विधिका निदर्शन ऐसे अच्छे ढङ्गसे किया गया है, कि अच्छी हिन्दी और साधारण संस्कृत जानने वाले पाठक सरलतासे बिना शिक्षकके दो मासमें ही अनुवाद करने योग्य बंगला सीख जाते हैं। बंगला सीखनेके लिये इससे अच्छी और सस्ती कोई भी पुस्तक हिन्दीमें नहीं है। केवल इसी एक पुस्तकको मननपूर्वक पढ़नेसे बंगला आ जाती है, यह गारण्टी है। मूल्य ।॥) मात्र।

हिन्दी-अंग्रेजी-शिक्षा।

भारत पर अंग्रेजोंका राज्य है। शहर, स्टेशन, अदालत, पोस्ट-आफिस, तारघर, थियेटर, बायस्कोप, सभा-सोसाइटी कहीं भी जाइये, यदि आप अंग्रेजी नहीं जानते, तो मूर्ख हैं! संसारकी गतिका आपको पता ही नहीं लग सकता। आप सफलतापूर्वक कोई व्यवसाय ही नहीं कर सकते। यहां तक कि सभ्य-समाजमें बैठनेकी योग्यता भी आपमें नहीं है। इसके सिवा अंग्रेजी 'लिङ्गो-फ्रैङ्का' है। चाहे जहां चले जाइये। यदि आपमें साधारण अंग्रेजी लिखने-पढ़ने और बोलने तथा समझनेकी योग्यता है, तो आपके लिये कोई कठिनाई पेश नहीं आवेगी। आपके लिये समस्त संसार के रास्ते खुले हैं। इस पुस्तकसे आप स्वयं हिन्दीके सहारे अंग्रेजी सीख सकते हैं। वर्ण-परिचयसे लेकर चिट्ठी-तार लिख पढ़ लेने तककी योग्यता इससे हो जाती है। दो चार मास परिश्रम करनेसे ही आप खूब अच्छी अंग्रेजी लिखने-पढ़ने, समझने तथा बोलने लगेंगे। मूल्य सर्वसुलभ ।॥)।